सूर्यास्त से पहले थोड़ी सी आग

मलयालम की दलित कविता

बजरंग बिहारी तिवारी

मलयालम की दलित कविता का विद्रोही स्वर सपाट समाजशास्त्रीयता से बचता हुआ अपनी अनूठी संश्लिष्टता में केवल परम्परा की ही नहीं, आधुनिकता के मार्क्सवाद सरीखे उन रूपों की भी तीखी आलोचना करता है जो क्रांति और सर्वहारा के नाम पर दलितों को हाशियाग्रस्त बनाए रखने का प्रपंच रचते हैं। इस कविता में धर्मांतरण को दलित-मुक्ति के वाहक के तौर पर स्वीकार करने से भी इनकार के स्वर भी हैं।

मलयालम भाषा का गहरा जुड़ाव उसकी दो पूर्ववर्ती भाषाओं तमिल और संस्कृत से है। संस्कृत से उसने खुले दिल से शब्द लिए हैं, जबकि तमिल उसे अपनी बोली मानती रही है। पंद्रहवीं शताब्दी तक यह भाषा अपना स्वत्व निर्मित कर चुकी थी। मलयालम की दो प्रारम्भिक शैलियाँ हैं— पाट्टु शैली और मणिप्रवाल शैली। 'पाट्टु' गीत या लोकगीत को कहते हैं। साहित्येतिहास में इसे 'पाट्टु प्रस्थानम' कहा जाता है। पाट्टु में मुख्यतः तमिल से या द्रविड़ स्रोतों से रचना विधान— शब्द और छंद लिए जाते हैं। मणिप्रवाल संस्कृत की ओर झुकी हुई शैली है। शृंगारिक विषय इस शैली में ज़्यादा निबद्ध होते हैं, जबकि पाट्टु में लोकजीवन, श्रम और उससे जुड़े कथ्य प्रधान रहते हैं। मलयालम भाषा के जनक तुंचेतु एषुताचन (1475-1575) ने पाट्टु को धर्म और अध्यात्म से जोड़ने का काम किया। उन्होंने *रामायण, महाभारत* और *श्रीमद्भागवत, महापुराण* की कथाएँ अपनी पाट्टु रचनाओं में अनुसृजित कीं। तुंचेतु एषुताचन तथाकथित निम्न जाति (चाकल) में पैदा हुए थे। उनके इस (अनुसृजन) कार्य को 'प्रतिरोध' के रूप में देखा जाता है। आज का दलित साहित्य स्वयं को पाट्टु परम्परा से जुड़ा पाता है। इस जुड़ाव के दो आधार हैं— सर्जक-समुदाय और गृहीत विषय। यही इनके वर्गीकरण का आधार भी बनाते हैं। हर दलित जाति के अपने पाट्टु होते हैं। इन जातियों में पाणन, परयन, पुलयन, कुरवन, मन्नान, मलयन आदि हैं। लम्बे समय से इन जातियों के लोग नृत्य-गीत प्रस्तुत करते आ रहे हैं। प्रमुख पारम्परिक पाट्टु गीतों में वेळपाट्टु,

कोइतु पाट्टु (कृषि गीत), तोट्टम पाट्टु, भद्रकाली पाट्टु, सर्प पाट्टु (भक्ति गीत), चेंगन्नूरादि पाट्टु (वीर पूजा गीत) के नाम लिए जा सकते हैं। छुआछूत की समस्या कई गीतों में उठाई गयी है। एक पुलयन पाट्टु में कहा गया है—

छूने से कोई काला हो जाएगा ? / कोई गोरा हो जाएगा ?
कोई लाल हो जाएगा ? / फिर कैसी छुआछूत ? ...
अभिजातों की छुआछूत।

आदि शंकराचार्य रचित *मनीषा पंचक्रम* में एक ब्राह्मण और चाण्डाल के बीच हुए संवाद को पोट्टन तैय्यम (पुलय गीत) में इस तरह रचा गया है—

कमर में बच्चा है / सर पे ताड़ी का लोटा
इधर काँटे हैं / उधर जंगल
फिर किस रास्ते से जाऊँ मैं ? / हाथी के ऊपर तुम बैठते हो
बैल के ऊपर हम / हमें काटने पर ख़ून निकलता है
तुम्हें काटने पर भी ख़ून निकलता है / फिर कुल को क्यों कोसते हो ?

खेतिहर श्रमिकों की व्यथा इन गीतों में भरी पड़ी है। दलित स्त्रियों पर अत्याचार के तमाम प्रसंग ऐसे गीतों में आये हैं। दलित विश्व-दृष्टि— ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, जागतिक प्रपंच, प्राकृतिक चमत्कारों, घटनाओं की व्याख्या इन गीतों में समाई है। आधुनिकता के आगमन से पहले का दलित जीवन, चिंतन और प्रतिरोध को जानने का स्रोत यह पाट्टु सम्पदा ही है। दलितों ख़ासकर परयों को संगठित करने वाले पोयकयिल योहन्नान (1879-1939) ने इस सम्पदा का भरपूर लाभ उठाया था। उन्होंने जो भी रचनाएँ कीं, वे सब पाट्टु कला-रूप में ही थीं। उनके गीतों ने एक तरफ़ चर्च प्रतिष्ठान को चुनौती दी, दूसरी तरफ़ दलित समुदाय में चेतना का प्रसार किया। सुदूर इतिहास में दलित स्वाधीनता, बाद में गुलामी की असहनीय पीड़ा और वर्तमान में करवट लेता समय योहन्नान के गीतों में अभिव्यक्त हुए हैं।

भक्ति आंदोलन को विषमता के विरुद्ध उठने वाली आवाज़ के रूप में भी देखा जाता है। आधुनिक दलित आंदोलन तक पहुँचने के लिए वह अनिवार्य पड़ाव की तरह है। जिन प्रांतों में मध्यकाल में भक्ति आंदोलन नहीं आया था उनमें दलित स्वर के ठीक पहले भक्ति की गूँज सुनाई देती है। यहाँ भक्ति का आशय ऊँच-नीच के विरुद्ध आलोचना से है। मसलन, बंगाल में मध्यकाल में दलित समुदाय से कोई ऐसा भक्त कवि नहीं उभरा जिसने अध्यात्म के मुहावरे में जाति-वर्ण को चुनौती दी हो। यह ऐतिहासिक दायित्व आधुनिक काल के दलित नायक श्री हरिचाँद ठाकुर को निभाना पड़ा। इसी तरह केरल में वेद-ब्राह्मण की सर्वोच्चता को भक्तिकाल में चुनौती नहीं दी गयी थी। यह भूमिका आधुनिक युग में एक तरफ़ योहन्नान (पोयिकयिल अप्पचन/ श्री कुमार गुरुदेवन) ने अदा की, तो दूसरी तरफ़ श्री नारायण गुरु ने। योहन्नान ने चर्च प्रतिष्ठान की आलोचना की तथा अछूतों के लिए बाइबिल को ग़ैर-ज़रूरी मान कर उसे आग के हवाले किया; तो श्री नारायण गुरु ने सनातन धर्म में विक्षोभ उत्पन्न किया। उन्होंने जातिगत भेदभाव को ख़त्म करने के उपदेश दिये तथा स्वयं शिव मंदिर की स्थापना कर ब्राह्मणों के विशेषाधिकार को चुनौती देते हुए शिव प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा की। अप्पचन के एक पाट्टु में कहा गया कि हर जाति के अलग-अलग चर्च हैं, चर्चों की यह शृंखला जाति के अंतर को दूर करने में असमर्थ है। एक अन्य गीत में वे कहते हैं—

हम हिंदू धर्म के पीछे गये / अजनबियों की तरह भटके
हम ईसाइयत के पीछे गये / अनाथों की तरह चक्कर लगाए
हिंदुओं ने हमें स्वीकार न किया / ईसाइयों ने हमें मंज़ूर न किया
इस दुनिया में कोई नहीं / जो हमें ज्ञान और बुद्धिमत्ता दे सके।

श्री नारायण गुरु की मशहूर रचना 'जाति-निर्णय' की प्रारम्भिक पंक्तियाँ हैं—

मानव की जाति है मानवता / जैसे गायों की जाति है गोत्व।

ब्राह्मण आदि उसकी जाति नहीं, / हाय! न जाने कोई तत्त्व यही।
एक जाति, एक धर्म, / एक ईश्वर मानव का,
एक योनि, एक आकार, / नहीं कोई भेद इसमें।
एक ही नर जाति से / निकलती है नर संतति
नर की, ऐसा सोचें तो, / है मात्र एक ही जाति।

श्री नारायण गुरु की मृत्यु 1928 में हुई और श्री कुमार गुरुदेवन की 1939 में। भक्ति के मुहावरे में ईश्वर के समक्ष मानव मात्र की एकता की माँग का मानो एक युग पूरा हुआ। 1940 से केरल की सामाजिक परिस्थिति में परिवर्तन घटित होता है। अब दो ऐसी विचारधाराएँ आ गयी हैं जो दलितों को अपने नज़रिये से देखते-दिखाते हुए बदलाव की हिमायत कर रही हैं। इनमें एक गाँधीवाद है तो दूसरा मार्क्सवाद। गाँधीवादी भाषा में अछूत 'हरिजन' हैं तो मार्क्सवादी भाषा में 'सर्वहारा'। पहली विचारधारा ढाँचे में सुधार चाहती है, तो दूसरी आमूल परिवर्तन के लिए इंक़लाब। उस समय का मलयाली साहित्य इन्हीं दोनों विचार-दर्शनों से मुख्यत: प्रभावित है। यह कहने में कोई हर्ज़ नहीं कि परिवर्तनवादी रचनाकारों को कम्युनिज़म ज़्यादा आकर्षित कर रहा है। प्रगतिवाद से जुड़े दलित पृष्ठभूमि के कवियों ने श्रम और श्रमिकों के शोषण के सवाल उठाए और जातिगत अपमान को भी अपनी रचनाओं में उतारा। ऐसे कवियों में के. शशिधरन उर्फ़ कल्लर शशि (1932-1996) का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। प्रगतिशील साहित्य को आगे बढ़ाने के लिए प्रगतिवादियों ने 1931 में 'जीवत साहित्य प्रस्थानम' की स्थापना की। अपनी स्थापना की शुरुआती तीन दशकों में इस संगठन ने अभूतपूर्व सक्रियता का प्रदर्शन किया। श्री नारायण गुरु के अनुयायी कुमारन आशान (1873-1924) ने सामाजिक सरोकारों वाली कथाओं/ कहानियों की हाव-भाव पूर्ण (नाट्य) प्रस्तुति की वकालत की थी। उनकी रचना *चण्डाल भिक्षुकी* की अनगिनत सफल प्रस्तुतियाँ हुई थीं। इस 'कथा प्रसंगम' की परम्परा को प्रगतिवादी नाट्य आंदोलन इप्टा ने अपने ढंग से आगे बढ़ाया।

प्रगतिवादी आंदोलन के उदय से पहले केरल में श्री नारायण गुरु के प्रभाव में सुधारवादी दृष्टिकोण वाले रचनाकारों की पीढ़ी सक्रिय रही। ऐसे रचनाकारों में दलित और ग़ैर-दलित दोनों थे। इस श्रेणी के कुछ चर्चित नामों में कुमारन आशान, सहोदरन अय्यप्पन, मुल्लूर एस. पद्मनाभ पणिक्कर, पण्डित के.पी. करुप्पन और पल्लतु रामन हैं। इनमें पण्डित करुप्पन की चर्चा आवश्यक है। कवि तिलक पण्डित करुप्पन (1885-1938) को मलयालम का पहला दलित कवि माना जाता है। उनका जन्म दक्षिण केरल के चेरनल्लूर गाँव के एक वाला परिवार में हुआ था। उनकी शिक्षा पारम्परिक तरीक़े से हुई थी। बाद में उनकी नियुक्ति संस्कृत अध्यापक के रूप में एर्णाकुलम के सेंट तेरासास हाईस्कूल में हुई। इसके उपरांत वे कास्ट ग्लेस हाईस्कूल में संस्कृत शिक्षक हुए। यह स्कूल सवर्णों के लिए था। यहाँ उनका विरोध स्वाभाविक था। उनकी नियुक्ति से नाराज़ शिक्षकों ने स्कूल आना छोड़ दिया और अभिभावकों ने विद्यार्थियों को स्कूल भेजना रोक दिया। विवाद गहरा गया। मामला एर्णाकुलम के महाराजा तक पहुँचा। राजा का निर्णय था कि पण्डित करुप्पन स्कूल में बने रहेंगे, भले ही अन्य शिक्षक और विद्यार्थी आना छोड़ दें। महाराज के इस दो-टूक फ़ैसले से समाज में एक सकारात्मक संकेत गया। बाद में पण्डित करुप्पन यहाँ के महाराजा कॉलेज में मलयालम विभाग के शिक्षक और फिर विभागाध्यक्ष हुए। वे कोचीन विधानसभा के सदस्य भी रहे। उनके प्रयासों से दलित (पुलयन, परयन) पृष्ठभूमि के कई नेताओं को विधानसभा सदस्य बनाया गया। जिन साहित्यिक संस्थाओं में सवर्णों का वर्चस्व था वहाँ पण्डित करुप्पन के कारण दलितों का प्रवेश हुआ। अपने समय की सभी प्रमुख पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुईं। उनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या छब्बीस है। इनमें *जातिकुम्मि, ध्रुव चरितं, सौदामिनी, पंचवटी, बालकलेशम, उद्यान विरुन्न* विशेष उल्लेखनीय हैं। कवि और नाटककार के रूप में पण्डित करुप्पन ने दलित चरित्रों को नायकत्व प्रदान किया।

जातिकुम्मि पण्डित करुप्पन की पहली चर्चित रचना है। 1912 में प्रकाशित इस कविता में नाटकीय तत्त्व भरपूर हैं। ईषव और अरय जैसी जातियों के विवाह समारोह में कुम्मि गीत गाए जाते हैं। इसे अम्मानपाट्टु कहा जाता है। जातिकुम्मि ऐसे ही अवसर पर गाए जाने के लिए लिखा गया था। शंकराचार्य रचित *मनीषा पंचकम्* के आधार पर तैयार इस गीत में जाति प्रथा की व्यर्थता का निरूपण है। काशी विश्वनाथ दर्शन के लिए निकले शंकराचार्य के मार्ग में एक परय आ जाता है। छूत के भय से शंकराचार्य उसे रास्ते से हटने को कहते हैं। उनकी आज्ञा का पालन न कर परय उनसे प्रश्न करने लगता है। उसके प्रश्न शंकराचार्य के अद्वैतवाद से ही उपजे हैं। देह पाँच तत्त्वों से निर्मित है। सबकी देह एक जैसी है। सभी में एक ही आत्मा है। तब एक परय को मार्ग से दूर जाने को क्यों कहा जाता है? *मनीषा पंचकम्* से पण्डित करुप्पन ने केवल कथा सूत्र ही लिए हैं। रचना का निर्माण उन्होंने अपनी सूझबूझ से किया है। इसमें एक प्रसंग है कि जब एक ब्राह्मण और नायर पानी में डूब रहे होते हैं तो अपनी उच्चता को लेकर चिंतित ब्राह्मण नायर को आदेश देता है कि वह पानी को गंदा करके पिये, क्योंकि साफ़ पानी पर तो ब्राह्मण का ही अधिकार है! पारिवारिक और सार्वजनिक समारोहों में *मनीषा पंचकम्* की प्रस्तुतियाँ कितनी रंजक, ज्ञानवर्धक और चुटीली होती होंगी, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। इस कृति के आधार पर निर्मित *पोट्टन तैय्यम* की चर्चा ऊपर कर आये हैं। कुमारन आशान और उल्लूर परमेश्वर अय्यर ने भी *मनीषा पंचकम्* को अपने ढंग से रचा है। पण्डित करुप्पन की दूसरी उल्लेखनीय रचना *उद्यान विरुन्न* है। इसकी रचना 1926 में हुई थी। कुल 25 श्लोकों में रचित यह कृति याचिका के रूप में है। राजा रामवर्मा की मूर्ति के अनावरण के अवसर पर आयोजित चाय पार्टी में पण्डित करुप्पन को उनकी जाति के कारण आमंत्रित नहीं किया गया था जबकि वे इसके सर्वथा योग्य थे। इससे आहत होकर उन्होंने 'उद्यान विरुन्न' की रचना की। इस रचना में ब्राह्मण श्रेष्ठता पर सवाल उठाया गया है। कथा के अनुसार व्यास ने ब्राह्मणों की दुर्दशा देखकर चारों वेदों को उनमें बाँट दिया। इससे व्यास कुल (अरय समुदाय) का जीना कठिन हो गया। आर्यों से पहले यहाँ अरयों का ही राज्य था। उसी कुल से पण्डित करुप्पन का संबंध है। इसके बावजूद उन्हें इस सरकारी आयोजन में आमंत्रित नहीं किया गया। *उद्यान विरुन्न* पढ़ने के बाद राजा ने निर्णय लिया कि भविष्य में यह चूक नहीं होगी और सभी विधान सभा सदस्यों को न्यौता जाएगा।

पण्डित करुप्पन ने सवर्णों की जातिगत संकीर्णता का मुद्दा उठाया साथ ही उन्होंने तमाम अछूत जातियों के बीच मौजूद भेदभाव को भी रेखांकित किया। ए. अच्युतन द्वारा उद्धृत यह कवितांश द्रष्टव्य है—

> दूर भागते हैं तीय्यन कणक्कन को देखते ही / गाली दे भगाते हैं कणक्कन पुलयन को देखते ही
> छुआछूत से मरते हैं आपस में / पुलयन परयन और उल्लाहन

पण्डित करुप्पन की रचना *भाषा नाटकम्* में मलयालम नाटकों को वर्णविरोधी कथावस्तु से जोड़ा गया है। उनके एक चर्चित नाटक *बालकलेशम* में पहली बार एक पुलय पात्र को नायक बनाया गया। 1913 में लिखित और 1918 में प्रथम मंचित इस नाटक में पुलय नायक कोचालु वर्णवादी साहित्य परम्परा और संस्कार पर आसीन होता है। दलित नाटकों के लेखन और मंचन का सिलसिला एक लम्बे अंतराल के बाद शुरू हो पाया। यथा अवसर इसकी चर्चा की जाएगी।

सुधारवादी दौर के दूसरे रचनाकार मुल्लूर एस. पद्मनाभ पणिक्कर (1869-1931) का ज़िक्र ज़रूरी जान पड़ता है। पतनमतिट्टा ज़िले के एडनाडु गाँव में एक ईषव परिवार में जन्मे मुल्लूर ने सामाजिक भेदभाव को अपनी कविताओं और गीतों में उभारा। वे श्री नारायण गुरु के अनुयायी थे और श्रीमूलम प्रजासभा के सदस्य होने के साथ एसएनडीपी योगम् आंदोलन में सक्रिय थे। उनके गीतों का संग्रह *पुलवृत्तम्* पुलयों की सामाजिक अवस्था को प्रकाश में लाता है और साथ ही जातिप्रथा का खण्डन भी करता है। वृत्त का अर्थ इतिहास होता है और छंद भी। ईषव और पुलय समुदायों की पारम्परिक अम्मानपाट्टु शैली में रचित ये गीत योगम् द्वारा आयोजित पुलय सभाओं में गाये जाते थे।

इनमें अय्यनकाली और श्रीनारायण गुरु के विचार निबद्ध होते थे। मुल्लूर के गीतों की अंतर्वस्तु और लोकप्रियता से सवर्ण बेहद रुष्ट थे। इसकी परवाह न कर राजा श्री केरल वर्मा वलियाकोइतंपूरन ने मुल्लूर को 'सरस कवि' की उपाधि दी थी। मुल्लूर के गीतों को पुलय समुदाय के प्रसिद्ध गायक करुम्बन दैवतन (1880–1927) ने गाया। दैवतन स्वयं एक विचारक, संगठनकर्ता और अय्यनकाली आंदोलन के कार्यकर्ता थे। वे इन गीतों की रचना के प्रेरणास्रोत भी थे। उनकी ओजस्वी वाणी और सधे कंठ ने *पुलवृत्तम्* के गीतों को जन-जन तक पहुँचाने का काम किया। मुल्लूर से उनकी वैचारिक और भावनात्मक निकटता ने दोनों आंदोलनों को जोड़े रहने में अपनी भूमिका निभायी।

रेणुकुमार की तमाम कविताएँ एक दलित बालक द्वारा (विमर्शपरक दलित दृष्टि के सायास आरोपण से मुक्त) अपने परिवेश और दुनिया को देखकर उपजी प्रतिक्रियाएँ हैं। इसके अतिरिक्त, वे एक दलित पृष्ठभूमि वाले चिंतनशील युवा की प्रश्नाकुल दार्शनिकता का परिणाम भी हैं। उनकी दार्शनिकता सतह पर दिखती नहीं। सामान्य काव्य उपकरणों, बेहद मामूली प्रतीत होते दृश्यों और अ-जटिल भाव रूपों से रची कविताएँ चमत्कृत नहीं करतीं।

I

श्रीनारायण गुरु से प्रेरित और अद्वैत दर्शन से प्रभावित समतावादी कवियों में एम.पी. अप्पन (1913–2003) का नाम लिया जाता है। उनकी गणना मलयालम के महाकवियों में होती है। अप्पन के बीस काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। अपनी एक कविता 'कोचुतंपूरनुम पुल्कोदियुम' में उन्होंने प्राकृतिक उपादानों के सहारे ऊँच-नीच की मानसिकता का खण्डन किया है। संवाद शैली में लिखी गयी यह कविता उच्चता के दावे को बड़े आहिस्ते से निरस्त करती है। संवाद एक राजकुमार और घास की एक पत्ती के बीच होता है। राजकुमार को अपने सूर्यवंशी होने पर गर्व है और इस गर्व को वह उच्च स्वर में फैलाता फिरता है। बेहद नम्र आवाज़ में घास की पत्ती कहती है कि इस धरती का हर प्राणी सूर्य से ही पोषण पाता है। इस तर्क से सभी सूर्यवंशी ठहरते हैं। तब वैशिष्ट्य का आधार ही नहीं बनता। रोमानी काव्यधारा से सम्बद्ध महाकवि एम.पी. अप्पन ने समालोचना की भी कई किताबें लिखीं।

के.के. गोविंदन उर्फ़ गोविंदन आशान (1921–19।।) ने कवि कर्म के साथ संगठनकर्ता की भूमिका भी निभायी। उनके द्वारा स्थापित संगठनों में आम्बेडकर स्टडी सर्किल और केरल हिंदू मिशन हैं। कवि के रूप में गोविंदन आशान की चर्चा मुख्यत: उनकी रचना *अरुकोला काण्डम्* के संदर्भ में की जाती है। वास्तविकता और मिथक के मिश्रण से तैयार इस लम्बी कविता का प्लाट दलितों और ग़ैर-दलितों की जीवित स्मृति का हिस्सा है। अरुकोला काण्डम् शीर्षक का चलताऊ अनुवाद 'भुतहा खेत' होगा। यह जगह अब भी इसी नाम से पत्तनमतिट्टा ज़िले में है। प्रेत पूजा मलयाली समाज में व्यापक चलन में रही है। 'चाव' (समाधि/ मज़ार) परिस्थिति-विशेष में भय, आस्था और पूजा के स्थल बन जाते हैं। दक्षिण केरल में आज भी 'चाव-पूजा' के
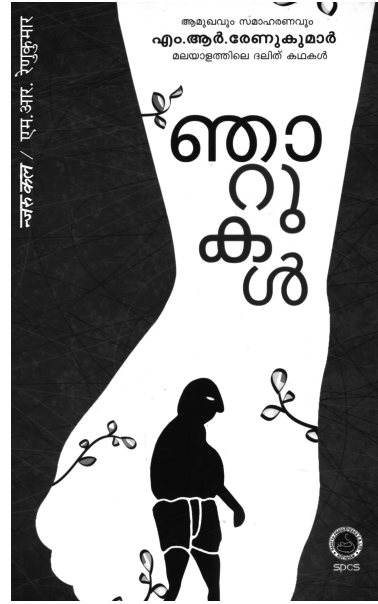
जीवंत स्थल मिलते हैं। *अरुकोला काण्डम्* की कहानी इस तरह है— एक दलित युवक अपनी बहन के घर आया हुआ है। दुर्योग से उसी समय उस गाँव के नायर तारवाड (भूस्वामी परिवार) की गाय चोरी हो गयी। शक के दायरे में आया दलित युवक अपने निर्दोष होने की बात कहता है मगर उस पर विश्वास नहीं किया जाता। उसे इस चोरी के अपराध में मौत की सज़ा दी गयी। भूस्वामी के कारिंदे पुलय युवक को दण्ड देने खेत की ओर ले गये। युवक ने भगवान से विनती की। सत्य उजागर करने को कहा। कारिंदों ने युवक का सर काटना चाहा। बार-बार विफल कोशिश की। असहनीय पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए युवक ने रहस्य खोला कि उसके शरीर से तांबे का ताबीज़ अलग कर दिया जाए। ऐसा करने पर ही हत्यारों को सफलता मिली। चट्टान ख़ून से रंग गयी। इसके बाद तारवाड में अकाल मृत्यु का भयावह सिलसिला शुरू हुआ। घबराए हुए नायर परिवार ने 'चाव' (प्रेत) पूजा प्रारम्भ की। जो पुलय युवक जीवित रहते नगण्य प्राणी था वही मृत्यु के बाद आराध्य देव बन गया! पारम्परिक समाज के प्रतिरोध और प्रतिशोध की पद्धतियों का गोविंदन आशान ने अपनी कविता में इस तरह सार्थक विनियोजन किया है।

मार्क्सवाद से आम्बेडकरवाद की तरफ़ आने वाले रचनाकारों में कवियूर मुरली (1930-2005) का नाम लिया जाता है। उन्होंने 1953 में कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता ली थी। पल्लतु रामन के सम्पादन में निकलने वाली प्रगतिवादी पत्रिका *पुरोगामी* में 1946 से मुरली की कविताएँ छपने लगीं। कम्युनिस्ट आंदोलन में सक्रियता के दौरान उनका झुकाव आम्बेडकर की ओर हुआ। कवियूर मुरली ने मलयालम में आम्बेडकरवादी दलित साहित्य को स्थापित करने में ऐतिहासिक भूमिका निभायी। इन्होंने दलित साहित्य का इतिहास लिखा, दलित भाषा पर विचार करते हुए इसी नाम से एक महत्त्वपूर्ण किताब लिखी। *दलित कोश* का सम्पादन किया और संगम साहित्य का दलित दृष्टि से अध्ययन करके *पुरननूर ओरुपदम* नामक ग्रंथ लिखा। मुरली का कहना था कि दलित लेखन के लिए आम्बेडकर-दर्शन से जुड़ाव अपरिहार्य है। दलित भाषा का वैशिष्ट्य रेखांकित करते हुए कवियूर मुरली बताते हैं कि यह कोई भाषा नहीं, बोली है। इसकी लिपि नहीं है। मुरली के दो काव्य संग्रह प्रकाशित हैं— *दर्शनम्* और *वयल चुल्लिकल*। 1995 में प्रकाशित दूसरे काव्य संग्रह *वयल चुल्लिकल* से उन्हें विशेष प्रसिद्धि मिली। 'वयल चुल्लि' एक ऐसी वनस्पति का नाम है जिसकी खेती नहीं की जाती। यह पौधा धान के खेत के मेड़ों पर और चट्टान की दरारों में अपने आप उग आता है। बिना देखभाल के फलता-फूलता यह पौधा औषधीय गुणों से युक्त होता है। यह पौधा काँटेदार होता है। समाज के हाशिये पर खड़े दलित समुदाय का रूपक है यह पौधा। परिधि और परिधि के बाहर रखे गये इस पौधे के हिस्से में उपेक्षा आती है मगर इसके बिना काम भी नहीं चलता। इस संग्रह की एक अन्य उल्लेखनीय कविता 'पंकियुम कोरनुम' है। बातचीत की शैली में लिखी यह कविता कम्युनिस्ट आंदोलन से निकले दलित दम्पती पंकि और कोरन के माध्यम से कुछ संदेश देती है। कभी ये दोनों युवक-युवती लाल झण्डा लेकर गर्व से प्रदर्शनों में हिस्सा लेते थे। जिन लोगों ने दलितों को सीढ़ी की तरह इस्तेमाल करके सत्ता प्राप्त किया उन्होंने ही बाद में वायदाख़िलाफ़ी की। कम्युनिस्ट आंदोलन ने दलित समुदाय को कुछ नहीं दिया सिवाय पीड़ा और दरिद्रता के। सारी मलाई नेतृत्व ने हड़प ली। भग्न हृदय कोरन निर्णय लेता है—

> एक पाई भी न दूँगा / किसी अन्य के द्वारा बनाई यूनियन को
> कोरन के सगे संबंधी क्यों मरें / दूसरे का काम करते हुए?

कल्लट शशि (1932-1996) स्कूली जीवन में ही कम्युनिस्ट पार्टी के सम्पर्क में आये और लेखन कार्य प्रारम्भ किया। मात्र 24 वर्ष की उम्र में उनकी कविता 'इण्डियायुदे मकळ' (भारत की बेटी, 1956) छपी। एक दलित स्त्री अम्मिनी के जीवन को प्रस्तुत करने वाली यह कविता स्वतंत्र देश में दलितों की नयी पीढ़ी की दुरावस्था सामने लाती है। कविता चार खण्डों में है। पहले खण्ड में छात्रा अम्मिनी का वैयक्तिक विवरण है। कवि उसका क्लास टीचर है। कवि को याद आता है कि अम्मिनी

फटे-पुराने कपड़ों में देर से स्कूल आती थी। उसे क्लास में कोई साथ नहीं बैठाता था। वह सबसे अलग-थलग कर दी गयी थी। उसकी किताबें जीर्ण-शीर्ण थीं। क्लास रूम के कोने वाली बेंच पर अकेली बैठी अम्मिनी कक्षाध्यापक के मन में पीड़ा का भाव जगाती थी। कविता का दूसरा खण्ड अम्मिनी के परिवार पर केंद्रित है। माता-पिता के मन में उसे लेकर बहुत उम्मीदें थीं। पिता उसे लेकर सपने देखा करते थे। उसे प्यार से 'पेण्णल' (श्रमिका) कहते थे। पिता की असामयिक मृत्यु हुई। परिवार की देखरेख का ज़िम्मा उठाने वाला बड़ा भाई दुर्घटना का शिकार होकर अपना दाहिना हाथ गँवा बैठता है। तीसरे खण्ड में क्लासरूम पर फ़ोकस है। दसवीं कक्षा का क्लास टीचर (कवि) अम्मिनी को लगातार अनुपस्थित पाकर कारण जानना चाहता है। बच्चे बताते हैं कि अम्मिनी अब खेतों में काम करने, मज़दूरी कमाने जा रही है। एक अध्यापक ने क्लास में पाठ्यपुस्तक और क़लम-पेंसिल न लाने के कारण उसे पीट दिया था। घर जाते अम्मिनी ने कहा था कि वह तभी स्कूल आएगी जब उसके पास किताब-पेंसिल होगी। कविता के चौथे या आख़िरी खण्ड में अम्मिनी देह व्यापार में पड़ी दिखाई देती है। पुरुष उस पर गिद्ध की तरह टूटते हैं। वेश्या के रूप में लांछित अम्मिनी गाँधी होटल के सामने दिखी। गाँधी की विरासत का यह हश्र बहुत-कुछ व्यक्त कर देता है। कवि को आख़िर में पता चलता है कि अम्मिनी हड्डियों का ढाँचा भर रह गयी है और गलियों में अपना जीवन काट रही है। एक मेधाविनी दलित छात्रा की यह परिणति गहरा अवसाद पैदा करती है। कल्लट शशि अपने लेखन के प्रारम्भिक दौर में वर्ग और जाति दोनों मुद्दों को साथ लेकर चलते हैं। फिर वे जाति की ओर ज़्यादा झुकते हैं और मार्क्सवादी पार्टी से दूर होते जाते हैं। क्रमशः उनके भीतर पार्टी को लेकर कटुता का जन्म होता है। इसकी अभिव्यक्ति 1983 में प्रकाशित उनकी कविता 'मर्दितंटे युद्धकाण्डम्' (मर्दितों के युद्धकाण्ड की किताब) में नज़र आती है। यह कविता वाम आंदोलन के विरुद्ध एक अभियान-सी है। कवि को अपनी कम्युनिष्ट पृष्ठभूमि पर पछतावा है। उस आंदोलन में शामिल होकर उसने अपनी कौम के साथ गद्दारी की है। कवि सारा दोष कम्युनिस्ट नेतृत्व को देता है जिसने दलितों को खोखले नारों और अर्थहीन वायदों के सिवा कुछ न दिया और ख़ुद धन-सम्पत्ति की लालच में सवर्ण-पूँजीपतियों की गोद में जा बैठे। कल्लट शशि ने अय्यनकाली पर कृतज्ञता भाव से भरकर कविता लिखी है। यह कृतज्ञता सम्पूर्ण दलित समुदाय की है जिनकी बेहतरी के लिए अय्यनकाली ने अपना जीवन लगा दिया। वैसे तो इस संसार में सब कुछ नश्वर है लेकिन अय्यनकाली अपवाद हैं। वे दलितों के हृदय में सदैव मौजूद रहेंगे। कवि अपनी कविता के ज़रिये उन्हें शब्दों का हार भेंट करता है। उसे दुःख है कि रचनाकारों ने अय्यनकाली की उपेक्षा की और किसी मूर्तिकार को यह नहीं सूझा कि वह अपनी छेनी-हथौड़ी से उनका आकार गढ़ दे।

उप्पंटे कूवल वरक्कुन्नु / एस. जोसेफ़
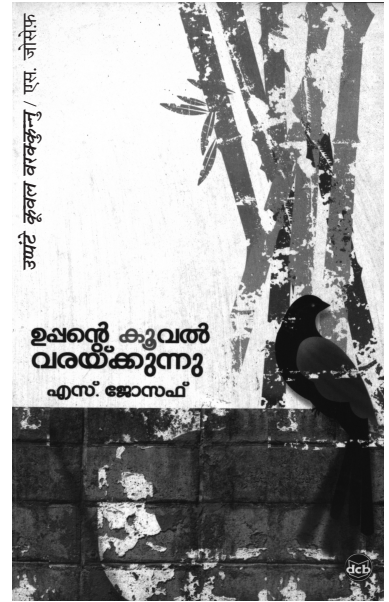
जोसेफ़ विमर्श की ताक़त तो पहचानते हैं, मगर विमर्शपरक अस्मितावादी आग्रहों से लदी भाषा के इस्तेमाल से यथासम्भव बचते हैं। वे प्रकट आक्रोश के नहीं, प्रणालीगत विडम्बनाओं के रचनाकार हैं—
लेकिन, अब भी मुझे पड़ोस की हवेली याद है / घास भरे अहाते के पास की पगडण्डी के साथ-साथ गुज़रा करता था / उस प्रांगण के कोने में फूलों से लदा एक वृक्ष खड़ा था / मुझे एक फूल की लालसा थी / एक गिरा हुआ फूल भी मेरी लालसा पूरी कर देता ...

अपने विश्लेषण में मार्क्सवादी और प्रतिबद्धता में आम्बेडकरवादी कल्लर सुकुमारन (1939–1996) विशिष्ट कवि के रूप में दिखाई देते हैं। उन्होंने दलित समाज को राजनीतिक नेतृत्व भी प्रदान किया। लोकप्रियता में उनका स्थान अय्यनकाली के ठीक बाद आता है। *दलित मुक्ति का राजनीतिक अर्थशास्त्र* लिखने वाले कल्लर सुकुमारन ने 1957 में केरल हरिजन फ़ेडरेशन की स्थापना की और समस्त दलित जातियों को एकजुट करने का प्रयास किया। बाद में यह संगठन इण्डियन दलित फ़ेडरेशन में रूपांतरित हो गया। फिर इसका विलय बहुजन समाज पार्टी में हुआ। कल्लर के माता-पिता ईसाई थे, लेकिन वहाँ जाति के आधार पर होने वाले भेदभाव से तंग आकर उन्होंने वह धर्म त्याग दिया। कल्लर सुकुमारन ने गुरुवायूर मंदिर का भोजनालय दलितों के लिए खुलवाने में मुख्य भूमिका निभायी। उन्होंने दलित श्रमिकों को संगठित किया और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए सतत आंदोलन किये। दलित समाज से जो लोग आगे आये हैं और विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठित हुए हैं उनसे कल्लर का कहना था कि वैयक्तिक प्रगति के बजाय सम्पूर्ण दलित मुक्ति ही लक्ष्य होना चाहिए। इस लक्ष्य के लिए अतीत को भुलाना नहीं, उसे बराबर याद रखना आवश्यक है। स्मृतियों में निहित संदेशों का विस्मरण मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध करता है। कल्लर ने निबंधों की सत्रह किताबें लिखीं। कविता की उनकी एक ही किताब है *ईंधनप्पुरा* (शस्त्रागार)। कविता में भारत को माँ के रूप में देखा गया है। यह माँ अपने बच्चों की दुर्दशा देखकर उदास है और संगम युग की याद करती है। संगम युग जाति के जंजाल से मुक्त समता का युग था। इसके विपरीत वर्तमान भयंकर विषमता का समय है। ग़रीब निरंतर ग़रीब होते जा रहे हैं और मुट्ठी भर लोग निरंतर धनी। वे अपना धन मंदिरों को स्वर्ण से भर देने में लगा रहे हैं। राजनीतिक पार्टियाँ जाति के आधार पर बनती हैं। ग़रीबों की बदहाली देखते हुए देश की स्वतंत्रता का दावा झूठ लगता है। कवि समापन अंश में समाधान प्रस्तुत करते हुए कहता है कि ऐसे में सभी दलितों को संगठित हो जाना चाहिए और ख़ुद को अग्नि-जिह्वा बना लेना चाहिए। हालात ऐसे हैं कि मात्र एक चिनगारी फैल कर सब कुछ जला सकती है।

वी.के. नारायणन (1940) 1981 में प्रकाशित अपने संग्रह *कर* (कलंक) से चर्चा में आये। इसमें कुल 25 कविताएँ हैं। प्रगतिवादी साहित्य से सप्रयास हटकर दलित संवेदना से जुड़ने वाले कवियों में इनकी भी गणना होती है। अपनी एक कविता में नारायणन कहते हैं— 'मैं ड्रिलिंग उपकरण हूँ/ बाँसुरी नहीं/ ना ही वीणा का कोमल तार/ मैं हूँ बारूद भरने के लिए छेद करने वाला औज़ार/ ड्रिलिंग उपकरण।' 'कर' शीर्षक कविता में वे दलित जनता को सावधान करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि उत्पीड़ित अपनी सांस्कृतिक पूँजी सँजोकर रखें। यह उत्पीड़ितों से संघर्ष में काम आएगी। इस कविता का दलित नायक उस रात को और स्वयं को बहुत कोसता है जब व्यक्तिगत सुख के लिए वह अपने सामाजिक दायित्व से विरत हो गया था। क्षणिक देहसुख के बाद आयी नींद की बहुत क़ीमत चुकानी पड़ी। अब वह तीर-धनुष लिए विशाल वृक्ष की डाल पर सन्नद्ध खड़ा है। 'बलिपुराण' नामक कविता में कवि राजा महाबली की आलोचना करता है। महाबली ने अपनी जनता से धोखा करके वामन के समक्ष समर्पण कर दिया। ऐसा राजा हर वर्ष केरल क्यों आता है? केरल की जनता उसके आगमन की ख़ुशी में ओणम मनाना बंद करे। 'उणर्न्निरूप्पवर' (जागे हुए लोग) कविता में कवि शोषितों के लौह संकल्प में विश्वास जताता है। वह उन्हें याद कराता है कि अपनी अंतर्निहित शक्ति को पहचानना ज़रूरी है और निरंतर जाग्रत रहना भी अपेक्षित है।

वी.के. नारायणन का संग्रह *एकलव्यन ञान्* (मैं एकलव्य हूँ) 1992 में आया। पाँच कविताओं वाले इस संग्रह की पहली कविता 'केलन' मिथक के भीतर सत्य रोपती है। काव्यनायक केलन दलित है और एक बार भूख लगने पर मालिक के पेड़ से एक फल तोड़ लेता है। निषिद्ध वृक्ष का यह वर्जित फल केलन को मृत्युदण्ड का भागी बना देता है। बाइबिल कथा से साम्य रखती इस कहानी में कवि एक नया आयाम जोड़ता है। केलन की चिता की लकड़ी के लिए कोई उस वृक्ष को काट डालता है।

उस वृक्ष पर आश्रित तमाम परजीवी लताएँ/पौधे भी विच्छिन्न कर डाले जाते हैं। वृक्ष अगर जाति का रूपक है तो परजीवी लताएँ सवर्ण समुदाय। वृक्ष से मिलता विशेषाधिकार का फल उन्हें लम्बे समय से पोषित करता आया है। इस घटना का एक साक्षी दलित लोकगायक पाणन जब कुछ दिनों बाद उस स्थल से गुज़रता है तो पाता है कि उस वृक्ष की जड़ों से नयी कोंपले और शाखाएँ निकल आयी हैं। वे पहले से ज़्यादा गझिन और तगड़ी हैं। नारायणन का एकलव्य अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ने वाला ऐसा आत्मसजग दलित है जो अपनी पृष्ठभूमि से परिचित है। वह 'गुरुभक्ति' के अर्थ से परिचित है। उसे कोई द्रोण छल नहीं पाएगा।

मूनतूर कृष्णन (1943–) पिछली शताब्दी के नवें दशक में दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में उभरे। इस दशक में उनके दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए *युद्धकाण्डम्* (1985) और *अडिमकळुटे पाट्टु* (गुलामों के गीत, 1988)। एक प्रतिबद्ध लेखक की छवि वाले मूनतूर कृष्णन का मत है कि रचनात्मकता को मुक्ति संघर्ष में हथियार की तरह इस्तेमाल किया जाना चाहिए। मूनतूर की कविताओं में नैतिक रोष आद्यंत परिव्याप्त है। वे समाज परिवर्तन के प्रश्न को सर्वोपरि रखते हैं। अपनी 'आह्वानं' कविता में वे सार्वभौम मानवतावाद को इस तरह ख़ारिज करते हैं— 'जब जलाई जाती हैं झोपड़ियाँ/ बलात्कार होता है औरतों का/ ख़ाक में मिला दिये जाते हैं गाँव/ कहाँ रहता है सार्वभौम मानवतावाद/ श्वेत कपोत के छद्म परिधान में लिपटा हुआ।' उनकी 'नाट्टिले पाट्टु' कविता में समाजवाद, जनतंत्र और नौकरियों में आरक्षण के मुद्दे पर तीखा व्यंग्य है। 'एंटे गुरुनाथन' कविता में डॉ. आम्बेडकर का गौरवगान है। 'वेळिचम् दुखमळ्ळ' कविता दलितों के लिए ज्ञान के प्रकाश की महिमा बखानती है। मूनतूर का नया काव्य संग्रह 2005 में *दलितम् मलयालम* नाम से छपा है। अपनी गेयता और सहजता के कारण इस संग्रह की कविताएँ लोकगीतों के निकट दिखती हैं। इतिहास की छानबीन करते हुए मूनतूर कृष्णन इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सभी धर्मों ने दलितों के साथ नाइंसाफ़ी की है। केरल के संदर्भ में हिंदू और ईसाई दोनों ही धर्मसत्ताओं ने दलितों को ठगा है। 'मार्गवासी' (धर्मांतरित ईसाई) और 'कण्डन्कोरंटे क्षेत्रप्रवेशम्' (कण्डनकोरन का मंदिर प्रवेश) शीर्षक कविताओं में कवि ने इसी मुद्दे की तरफ़ ध्यान खींचा है। 'भारतम् स्वातंत्रमायतिल पिन्ने' (स्वतंत्र होने के बाद भारत) कविता में कहा गया है कि दलितों के लिए इस स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं। वे अब भी कमोबेश पुरानी स्थिति में हैं। 'आम्बेडकर' और 'अय्यनकाली' शीर्षक कविताओं में इन महानायकों की प्रासंगिकता रेखांकित की गयी है। 'कुंजिपेन्नु' कविता आंतरिक आलोचना का स्वर लिए हुए है। दलितों में उपजाति को लेकर होने वाला भेदभाव कवि के निशाने पर है। परय जाति की युवती पुलय युवक से प्रेम करती
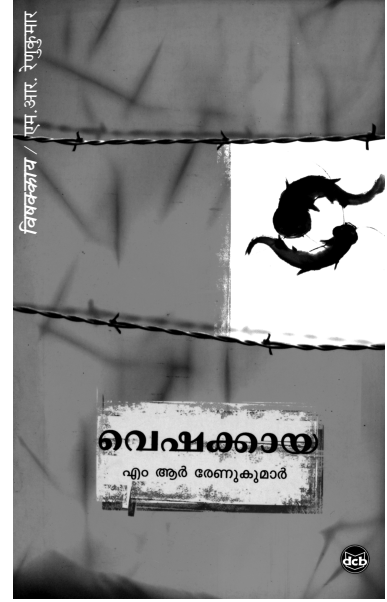
रेणुकुमार अपने जेण्डरसंवेदी दृष्टिकोण के लिए भी जाने जाते हैं। उनकी कई कविताएँ स्त्री के दुःखमय जीवन का शब्दचित्र लगती हैं। 'स्त्री-जीवन' में मौजूद अतिव्याप्ति दोष से बचने के लिए इसे दलित स्त्री का दुख कहना चाहिए। अपनी कविताओं में आयी स्त्रियों को यद्यपि उन्होंने किसी श्रेणीपरक नाम से अभिहित नहीं किया है परंतु परिवेश और जीवन-स्थिति उन स्त्रियों के दलित होने का ही संकेत देते हैं। ये कविताएँ उनके रचनाजगत के 'एक और विषय' के रूप में न होकर उनकी काव्य संवेदना के अभिन्न अंग के रूप आयी हैं।

है। उन्हें उम्मीद है कि उनकी शादी हो जाएगी। युवती को अपने प्रेमी की जाति का ठीक-ठीक ज्ञान तब होता है जब वह उसे काठ के हल से भैंसे से जुताई करते हुए देखती है। परय अपने को उच्च मानते हैं और वे ऐसी जुताई कर नहीं सकते। बनता हुआ संबंध जाति की जानकारी होने से बिख़र जाता है। भीतर पैठी सवर्णता से छुटकारा पाए बग़ैर दलित अस्मिता का निर्माण नहीं हो सकेगा।

के.के.एस. दास (1946-) की चर्चा उनकी दो कविताओं के कारण विशेष रूप से की जाती है— 'मलनाडिंटे मट्टोलि' (मलय पर्वत की अनुगूँज, 1975) और 'करूमडि नृत्यम्' (करुमडि का नृत्य, 2003)। पहली कविता अय्यनकाली पर है। इस कविता में अय्यनकाली के उद्भव को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। इस कविता के दो खण्ड हैं। पहले खण्ड में अय्यनकाली पूर्व का समाज चित्रित है। यह समय दलितों के लिए अत्यंत यातनादायक था। उनके जीवन की कोई क़ीमत नहीं थी। कवि इस अन्यायी चातुर्वर्ण्य समाज व्यवस्था की भर्त्सना करता है। कविता के दूसरे हिस्से में दमकते सूर्य की तरह मुक्तिकारक अय्यनकाली का जन्म होता है। कविता इतिहास से जीवनी में पहुँचती है। अय्यनकाली के संघर्षों से हासिल मुक्ति-बोध को याद करते हुए कवि कहता है— 'बिखर गयी थीं/ शृंखला की कड़ियाँ/ रोप दी थी विजय पताका तुमने/ ऊँचाइयों पर।' कविता का अंत इस उम्मीद के साथ होता है कि दिन दूर नहीं जब स्वतंत्रता जीवन-जगत की लय बन जाएगी। 'करूमडि नृत्यम्' प्रतिरोध से आगे जाकर प्रतिशोध की कविता लगती है। सवर्ण अत्याचार से अपने समुदाय को त्रस्त देखकर कवि दलित स्त्रियों को सलाह देता है वे जंगल जाएँ, फल-फूल के साथ (देवी) काली की आत्मा को भी साथ लाएँ। दलित युवकों को निर्देश देता है कि वे वेळन के शर, वालन की तलवार, कालन (काल=यमराज) का पाश और मादन की गति प्राप्त करें। वे तब उत्पीड़कों से बदला लें। ये सभी दलित देवता माने जाते हैं। कविता दलितों से आग्रह करती है कि वे अपने शत्रुओं के दिल और दुर्ग दोनों को हमेशा के लिए नष्ट कर दें। दलित तभी सुकून और सुविधा से रह पाएँगे।

दलित कविता का भिन्न तेवर तंकप्पन (1949-) के यहाँ मिलता है। 'टिकठी वाहक', 'चटाई पुराण', इतिहास, 'अम्मा', 'भूमि' आपकी चर्चित कविताएँ हैं। इन कविताओं में आक्रोश भरपूर है। यह आक्रोश अनुभव को इतिहास से जोड़कर बनाया गया है। 'अम्मा' कविता की दलित स्त्री पास आये पुरुष की नीयत पहचान कर इस तरह प्रत्युत्तर देती है—

> आँचल पकड़े काले हाथों को / दाँत से काट कर
> लौकिक लज्जा की / गंदी खाल उतारकर
> मैं जान लेती हूँ / मेरी कमर
> तुम्हारे कामासक्त आक्रमण / की शय्या नहीं।
> कटु अनुभवों के कफों को / छाती की ख़ान से खींचकर
> तुम्हारे मुख पर थूकने में / समर्थ हूँ मैं
> नी...च, नीच।

चटाई पुराण ('परयपुराणम्') कविता में चटाई उस सामाजिक व्यवस्था की प्रतीक है जो दलितों पर थोप दी गयी है। जाने कब की, किसके द्वारा बिछाई इस चटाई पर 'मैं और मेरे बंधु/ सड़-गल के मरते हैं।' 'टिकठी वाहक' कविता के अरथी उठाने वालों को अब और धोखे में नहीं रखा जा सकता। वे समझ चुके हैं इस सड़ांध से बचना है तो कंधे से अरथी उतार देनी होगी। 'इतिहास' कविता में कवि उत्पीड़ितों की एकता सम्भव होते देखता है। ज़मींदार के गुलाम और ज़मींदार का उपेक्षित कुत्ता संगठित हो रहे हैं। इस निर्माणशील संगठन को न देख पाने वाले कवि अब भी 'विलाप काव्यों' की रचना किये जा रहे हैं।

राघवन अत्तोली (1957-) मलयालम दलित कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। कवि होने के साथ वे प्रतिष्ठित शिल्पी भी हैं। उनके कई काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं— *कण्डत्ति* (1996), *मोषिमाट्टम* (1998), *मौनशिलाकालुदे प्रणयक्कुरिप्पुकळ* (मौन शिलाओं के प्रणय गीत, 1999), *कनलोरमगळ* (अंगार जैसी स्मृतियाँ, 2000), *कतुन्न मषगळ* (जलती बारिश, 2001), तथा *चाव मषगळ* (मृत

वर्षा, 2008)। राघवन अत्तोली की रचनाएँ व्यथा के दस्तावेज़ हैं। उनमें कटुता भी ख़ूब है। यह कटुता दलित-दमन से उपजी है। वे मूलनिवासीवाद के निकट दिखाई पड़ते हैं। वे चाहते हैं कि वह समय वापस आये जब दलितों का इस भूमि पर शासन था। सामाजिक क्रांति में साहित्य की भूमिका स्वीकारते हुए 'काले लफ़्ज़' कविता में अत्तोली कहते हैं— 'ड्योढ़ी में दूसरों की पुकार की प्रतीक्षा में बैठी कन्याएँ हैं/ भूख से तड़पते बच्चे हैं/ तब क्रांति के सपनों को ख़त्म करने वाले कविगण/ विवाह नक्षत्र को विवाद का विषय बनाते हैं।' ब्लैक लोगों का संघर्ष पूरी दुनिया में चल रहा है। राघवन अत्तोली केरल के 'ब्लैक आंदोलन' को इसी वैश्विक संघर्ष का हिस्सा मानते हैं। इस संघर्ष में वे अपने पुरखों से प्रेरणा लेने की बात करते हैं। अपनी माँ कण्डत्ति पर इसी शीर्षक से लिखी कविता में कवि तमाम दलित माँओं की पीड़ा उकेरता है—

भीड़ के बीच भीख में मिले अन्न-सा / क्षत-विक्षत बन खड़ी है वह
पानी लेने पीने में जो करते हैं / छुआछूत की राक्षस क्रीड़ा
उनके बीच सूखा गला लिए मरने वाली / यह मेरी माँ।

अत्तोली कम्युनिस्टों के घोर आलोचक हैं। वे इन्हें दलित विरोधी और अभिजात समर्थक मानते हैं। कम्युनिज़्म पर लिखी कविताओं जैसे 'ब्राह्मयूनिज़्म' (ब्राह्मनिज़्म+कम्युनिज़्म) और 'चंगळक्कु तीपिडिक्कुन्नु' (आग पकड़ रही है चेन) में उन्होंने कम्युनिस्टों को ब्राह्मणवाद का साथी माना है। 'आग पकड़ रही है चेन' कविता का अंश है—

कॉमरेड आगे बढ़ो / जिन्होंने आगे बढ़ने को कहा
वे पीछे मुड़ गये / वे बेटे थे जन्मियों के
वर्चस्व के समर्थक / मेरे सीने में गोली दागी
मारते हुए / आँखें दिखीं शीशे में
कोई संगीन नहीं मेरे पास / तीर-धनुष भी नहीं
बमों के साथ गुरिल्ला भी नहीं / मेरी रक्षा करने को।

शशि मधुरावेलि (1959-2004) अपने समकालीनों में सबसे अलग कवि रहे। आक्रोश से ऊष्मित, हताशा से विषण्ण, नाउम्मीदी से उदास दलित कविता के परिदृश्य में उनकी आवाज़ ऊर्जा से भरी, संघर्ष चेतना से परिपूर्ण, परिष्कृत अभिव्यक्ति से सुसज्जित सुनाई देती है। वे वैयक्तिक अनुभवों से आगे जाकर पूरे समुदाय को समेटते हैं। उनके यहाँ दलित जीवन अपनी समग्रता में विन्यस्त दीखता है। उनकी रचना प्रक्रिया बेहद सूक्ष्मता से गतिशील होती है और इस क्रम में एक संश्लिष्ट कविता का जन्म होता है। शशि का एक ही संग्रह प्रकाशित हुआ— *बलिक्काक* (बलि भाग पाने वाला कौआ, 2001)। इस संग्रह की एक कविता 'शम्बूकन' में कवि ने नयी *रामायण* लिखे जाने की आवश्यकता बतायी। नयी *रामायण* के लिए नये वाल्मीकि को आना होगा। तप का परिणाम मोक्ष होता है। मोक्ष तप करने वाले को ही मिलता है अर्थात् वह वैयक्तिक है। ऐसा मोक्ष नहीं चाहिए। मुक्ति और शांति अब सबको चाहिए। 'बलिक्काक' शीर्षक कविता में पितृपक्ष में कौआ अपने घर आता है। इस योनि में आने से पूर्व वह जिस घर का मुखिया था अब वह परिवार चरम दुर्गति का शिकार है। पत्नी कंकालवत् है, बेटा पत्थरदिल। युवती होती बेटी अरक्षित है। उसके भाइयों और बहनों में निरंतर कलह मची हुई है। यह सब उसे दुखी करने के लिए पर्याप्त है। 'अन्ना', 'अम्मू' जैसी कविताओं में शशि मधुरावेलि ने दलित स्त्रियों की ज़िंदगी पेश की है। शारीरिक और मानसिक रूप से टूटती स्त्रियाँ समाधान रहित हैं। 'अन्ना' कविता की दलित युवती को विकल्प के तौर पर ईसाई धर्म अनुकूल मालूम पड़ता है। धर्मांतरित होने के बाद—

अन्ना अब बाहर नहीं जा सकती / गोरे मालिक के यहाँ काम करके वह देर से लौटती है
उसके पास अब क्रॉस, माला और एक बच्चा है / अन्ना को गुलाम ही पैदा होना है;
वह बाइबिल पढ़ती है / वह अन्ना पुलक्कली है।

II

मलयाली दलित रचनाकारों की नयी पीढ़ी पिछली शताब्दी के नवें दशक में नमूदार हुई। यह पीढ़ी पिछली पीढ़ियों से कई मायनों में भिन्न थी। इस पीढ़ी के कुछ लोग अपने परिवारों से प्रथम शिक्षित व्यक्ति थे तो कई औसतन पढ़े-लिखे परिवारों से ताल्लुक़ रखते थे। सामाजिक आंदोलनों की विरासत उन्हें प्राप्त थी। उन आंदोलनों का हासिल भी उनके हिस्से था। जाति तंत्र की पारम्परिक क्रूरता का अवसान हो चुका था। मगर, उसके अवशेषों ने सामूहिक चित्त में ठिकाना बना लिया था। अब संघर्ष का स्वरूप पार्थिव से ज़्यादा मानसिक था। पोथीधारियों को नेपथ्य में पहुँचाकर वर्चस्व के नये चेहरे मंच पर पहुँचने लगे थे। नया शोषण तंत्र पहले ही प्रादेशिक से बढ़कर राष्ट्रीय हो गया था। अब उसका रूप वैश्विक हो रहा था। जन्मी की जगह भू-माफ़िया आ रहे थे। समाज परिवर्तन के आंदोलनों में शिथिलता आ गयी थी। उनकी जगह नये आंदोलन रूपाकार ले रहे थे। यही वक़्त था जब आंदोलनों का तेज़ी से एनजीओकरण हो रहा था। अस्मितावादी संगठन सुविधाहीनता के चलते, आर्थिक संसाधनों की कमी के चलते, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी बात पहुँचा सकने की सम्भावनाओं के चलते, एक बड़े नेटवर्क से सम्बद्धता की गारंटी के चलते और अन्यान्य कारणों से एनजीओ में ढल रहे थे। नयी कोशिशें किसी 'विज़न' से परिचालित न होकर 'टारगेट' से संचालित होने लगी थीं। यह 'विश्वास' इसी दौर में फैला कि कम्युनिस्ट विचारधारा के रहते अस्मितावादी संगठन फल-फूल नहीं सकते। केरल में मार्क्सवाद को शत्रु की तरह देखने का रवैया दलित (राजनीतिक) कार्यकर्ताओं, लेखकों में इस दौरान ख़ास तौर से पनपा। मानवाधिकारों के लिए संघर्ष में बड़ी तेज़ी आयी लेकिन अस्मितावादी आग्रहों से उसकी सार्वभौमिकता खण्डित भी हुई। सांस्कृतिक अस्मिताओं की आकांक्षा और कार्य-पद्धति को समझने में मार्क्सवादी चिंतक, एक्टिविस्ट न केवल चूके अपितु इनके प्रति किंचित उपहास-भरा रुख़ अपनाया। इससे दोनों के बीच दरार और चौड़ी हुई। इस स्थिति ने एनजीओ फ़ंडिंग एजेंसियों को सहूलियत बख़्शी।

आंदोलनों की बदली चाल-ढाल से नयी चुनौतियाँ भी खड़ी हो रही थीं। दलित रचनाकारों के सामने दोहरी मुश्किल थी। संगठन से जुड़कर लिखने की ताक़त वे जानते थे मगर वित्त पोषित संगठन की ज्ञात-अज्ञात शर्तें असमंजस में डाल रही थीं। नतीजतन, रचनाकारों की एक ऐसी पीढ़ी सामने आयी जो किसी भी एनजीओ-ग़ैरएनजीओ सांगठनिक जुड़ाव से मुक्त थी। इसके साथ, इस पीढ़ी के तमाम दलित रचनाकार सरकारी नौकरियों में रह कर लिख रहे थे। इसका असर उनकी लेखनी पर पड़ना स्वाभाविक था। देश के दूसरे हिस्सों में दलितों पर हमले और हिंसा जारी थी, मगर केरल में सामाजिक आंदोलनों तथा वाम शासन के कारण ऐसी संरचनात्मक या संस्थागत हिंसा पर काफ़ी हद तक क़ाबू पा लिया गया था। इस स्थिति ने दलित आक्रोश पर निर्णायक असर डाला। आक्रोश का आभ्यंतरीकरण इसी परिवेश में सम्भव था। केरल की दलित कविता में जो दार्शनिकता दिखाई पड़ती है वह आक्रोश के आभ्यंतरीकरण का ही परिणाम है।

इस पीढ़ी के दलित कवियों में सण्णी कविक्काड (1962) का नाम सबसे पहले आता है। सण्णी की काव्ययात्रा अनुभवमूलक कविता से विमर्शमूलक कविता की यात्रा का साक्ष्य भी है। अपने पहले संग्रह *पडि इरङ्ङ्न्नु* (सीढ़ी उतरता है) में वे त्रासद जीवन-स्थितियों का साक्षात्कार कराते हैं। व्यवस्था में पसरी क्रूरता किस तरह पीड़ितों को सतत प्रतारणा के घेरे में बाँध देती है, इसके बड़े प्रामाणिक और संवेदनशील चित्र इस संग्रह की कविताओं में मिलते हैं। जो बात ग़ौर करने की है वह यह कि सण्णी अपने काव्य-नायक को न तो आक्रोशित दिखाते हैं और न संघर्षयुक्त या समाधान खोजने में संलग्न। वे तो बस जीवन को समस्त दुखों और निरुपायताओं के साथ प्रस्तुत करते हैं। यह निरुपायता पाठक को नाउम्मीदी या अवसाद की ओर ले जा सकती है। विमर्शकारों ने इसीलिए सण्णी कविक्काड के इस संग्रह में विन्यस्त पलायन और नकारात्मकता की आलोचना की है। गहरे अर्थों में

सृजन के कोण से ऐसी कविताएँ कदापि कमतर नहीं कही जा सकतीं। बग़ैर किसी हस्तक्षेप के 'नियति' का बेलौस अंकन प्रत्याशित दिशा भले न सुझाता हो, जीवन-वास्तव से निश्चय ही रूबरू कराता है। 'ज्योतिषी' कविता देखिए— 'महिला ज्योतिषी की निगाहें/ मेरी हथेलियों की लकीरों पर धड़कती हैं।/ शिक्षा की लकीर/ घृणा के किनारे/ ख़त्म होती है।/ प्रेम की लकीर पर/ प्रेमिका की लावारिस देह तैरती है।/ जीवन-रेखा नरक में जाकर समाप्त होती है।/ दाँव पर लगी ज़िंदगी संकट में है/ ठण्डी अँधेरी रातों में भी नींद नहीं।/ तुम शहर में और गाँवों में भीख माँगोगे/ टिन का कटोरा लिए/ हाथ पर होंगे राजदण्ड के चिह्न।/ काला भविष्य पोतकर/ ज्योतिषी चल पड़ती है/ चमकते सूर्य (की रोशनी) में/ रजत मुस्कान के साथ।'

'विदा' शीर्षक कविता का दलित युवक बाधाओं से जूझे बिना अपनी पराजय स्वीकार कर लेता है। वह बचपन से जिस लड़की के साथ जुड़ाव महसूस करता आ रहा था उसे अपना नहीं पाता। न अपनाने का निर्णय उसने ख़ुद किया है। स्थितियों की जकड़बंदी और वैयक्तिक दृढ़ता में कमी उसे पलायन की ओर धकेलते हैं। हाँ, परिवेश के चित्रण में कवि कहीं नहीं चूकता। दलित लड़की का चित्र है—

गले में लिपटा काला धागा / कान के छेद में पड़ा एक काँटा
कर्णाभूषण की तरह / धब्बेदार आधा स्कर्ट
किसी की उतरन / काला जैकेट
(वह) दिखती है हमेशा / इसी बाने में।

'नग्न सत्यंगल' (नंगा सच) कविता में भी दलित जीवन में छाई दुख की बदली का शब्दांकन है। कविता में ग़रीबी और वंचना के बिम्बों की लड़ी है— रेंगती हुई बोझिल रात, दीये की टिमटिमाती बाती, आँसू भरी आँखें, चम्मच-भर कांजी (पनीली खिचड़ी) को बिलबिलाते बच्चे, साँस लेने की कोशिश करते मरणासन्न पिता ...। लेकिन यह कविता दुख निरूपण करके समाप्त नहीं होती। उसका समापन इन शब्दों से होता है— 'सब कुछ को नये रूप में ढालने के लिए/ सूर्य को फिर से रोक लेने दो।' सूर्य 'सोलर सिस्टम' का नियामक है। उसे रोका जाना समूची व्यवस्था को नयी तरतीब देना है। 'पडि इरङ्ङन्नु' कविता भी एक दलित युवक के दुख और असहायता की कथा है। 'विदा' कविता में युवती को उसके प्रेमी ने त्यागा था तो इस कविता में माँ को उसका युवा पुत्र छोड़कर चला जाता है। माँ शाम के भोजन का स्वाद भूल चुकी है। पिता हर दिन घर का रास्ता बिसर जाता है लेकिन वह हमेशा लौट आता है। उस असहाय युवा के गरम गाल पर कड़वे होठों का चुम्बन मृत्यु का अंतिम स्पर्श प्रतीत होता है।

'वर्तमानम्' कविता में कविक्काड कम्युनिस्ट पार्टी की प्रासंगिकता पर सवाल उठाते हैं। दलित मुक्ति के मुद्दे पर इस पार्टी की भूमिका कवि की दृष्टि में संदिग्ध है। दलित इंतज़ार करते-करते थक चुके हैं लेकिन न तो अब तक वर्ग-संघर्ष शुरू हो पाया है और न सत्ता पर सर्वहारा ने क़ब्ज़ा ही किया है। कम्युनिस्ट नेता घिसे-पिटे जुमलों से पार्टी की विफलता को ढँकने की अर्थहीन चेष्टा करते हैं। तल्खी से भरा दलित कवि प्रश्न करता है—

मित्र, कॉमरेड! / अभी और क्या कहना शेष है
साम्राज्य, संकट / कॉमरेड, ये शब्द क्यों
इन रेगिस्तानों में / वसंत आएगा भी ?

उत्पीड़ित समुदाय द्वारा परिवर्तन का एक सपना देखा गया था। इस सपने को पार्टी साकार करेगी, ऐसा मज़दूरों का भरोसा था। सपने को मज़दूरों की पार्टी ने जिलाए रखा था। अब यह सपना अपनी चमक और ताज़गी खो चुका है। बेस्वाद और बासी हो चुके सपने पर यह कविता एक शोकगीत है।

पडि इरङ्ङन्नु के बाद सण्णी अपने नये संग्रह *बलियाडुकळुडे वेळिप्पाडुकल* (बलि के बकरों का रहस्योद्घाटन, -2000) में पुराने काव्य प्रतिमानों से आगे बढ़ चुके हैं। इस संग्रह में आत्मदया और निरुपायता के दर्शन नहीं होते। कविता का रंग-ढंग बदल चुका है। कवि अब सीधी कार्रवाई द्वारा

व्यवस्था परिवर्तन का हामी है। इस संग्रह की उल्लेखनीय कविताओं में 'कालम्', 'निषेधिकळ' और 'पुल्लु विल्पनक्कारी' की चर्चा की जा सकती है। 'कालम्' (समय) में कवि का प्रस्ताव है कि अब प्रतीक्षा का वक़्त बीत चुका है। दलितों को अब अपनी स्वतंत्रता और अधिकार के लिए ख़ुद लड़ना है। यह याद करने का समय है कि पहले जिन लोगों ने प्रश्न उठाने और सच कहने की हिम्मत की उन्हें उसकी क़ीमत अपनी जान देकर चुकानी पड़ी। उस स्थिति से आगे जाकर अब सीधे भिड़ना आवश्यक हो गया है। दलित अपनी खोई हँसी, गुमी ताक़त क्रमश: चाँदनी और अँधेरे से फिर हासिल करें। अपनी मुश्किलों के हल के लिए उन्हें आगे बढ़ना है। 'निषेधिकळ' कविता में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि दलित आत्म-बोध अर्जित करे। ख़ुद को पहचानने के बाद ही क्रियाशीलता आएगी और मुक्ति सम्भव होगी। यह कविता आदम और हव्वा के मिथ के ज़रिये यह रेखांकित करती है कि स्वर्ग के नियमों का अनुपालन न करना आदम-ईव के लिए शुभ रहा। वे वहाँ से बहिष्कृत हुए और तब उन्हें अपनी नग्नता का ज्ञान हुआ। आत्मज्ञान सामाजिक उत्थान की दिशा में पहला क़दम है। 'पुल्लु विल्पनक्कारी' (घास बेचने वाली) दलित स्त्री की यातना का चित्रण करने वाली कविता है। कविता की दलित स्त्री गैंग रेप की शिकार होती है। रेप करने वाले सवर्ण होंगे, ऐसा संकेत दिया गया है। वह स्त्री बाज़ार में घास बेचकर गुज़ारा कर रही है। उसकी पीड़ा का कोई ओर छोर नहीं। किसी कोने से प्रतिरोध का कोई स्वर न पाकर कवि सीधी कार्रवाई की वकालत करता है। इसकी पहल वही करेगा—

अगर कोई गतिशील संघर्ष नहीं / मैं थोड़ी-सी आग उछाल रहा हूँ
सूर्यास्त होने से पूर्व / इस जगह को जला डालने के लिए।

'पथ-खोजी' कविता में वह संकट और संघर्षरत दलित समाज के रहनुमाओं से प्रश्नवाचक मुद्रा में दिशा तय करने की बात करता है—

ठीक सामने अग्नि सागर / पीछे मौत के गहरे गड्ढे
किधर जा रहे हो / जब आग लगी हो जंगल में / हर दिशा धू-धू
तुम कौन-सा रास्ता पार करोगे?

दलित साहित्य में शामिल होने से पहले एस. जोसेफ (1965) मलयालम कविता में चर्चित हो चुके थे। साहित्यांदोलन किस तरह सामाजिक आंदोलन के साथ चलते हुए भागीदारी का फ़लक विस्तृत करता है और चुम्बकीय वातावरण का निर्माण करता है, यह जोसेफ की काव्यदिशा में आये मोड़ से समझा जा सकता है। अपनी दलित ईसाई पृष्ठभूमि के कारण जोसेफ दमन और अवमानना के अपेक्षाकृत अल्पज्ञात पहलुओं को सामने ला पाते हैं। उनके प्रमुख काव्य संग्रहों में *करुत कल्लु* (2000), *मीनक़ारन* (2003), *आइडेंटिटी कार्ड* (2004) और *उप्पंटे कूवल वरक्कुन्नु* (2009) हैं। जोसेफ़ की कविता बोलचाल की भाषा में रची होने के बावजूद अर्थ की बहुस्तरीयता समेटे रहती है। वे विमर्श की ताक़त तो पहचानते हैं, मगर विमर्शपरक अस्मितावादी आग्रहों से लदी भाषा के इस्तेमाल से यथासम्भव बचते हैं। वे प्रकट आक्रोश के नहीं, प्रणालीगत विडम्बनाओं के रचनाकार हैं। 'इडास्सेरी बाग़ के बारे में' नामक अपनी कविता में वे एक तरफ़ प्रकृति के मनोरम और मुक्त सौंदर्य का चित्र खींचते हैं दूसरी तरफ़ अपने बचपन को याद करते हुए इस चुभन को महसूसते हैं—

लेकिन, अब भी मुझे पड़ोस की हवेली याद है
घास भरे अहाते के पास की पगडण्डी के साथ-साथ गुज़रा करता था / उस प्रांगण के कोने में
फूलों से लदा एक वृक्ष खड़ा था / मुझे एक फूल की लालसा थी
एक गिरा हुआ फूल भी मेरी लालसा पूरी कर देता

मैंने कभी एक फूल नहीं तोड़ा / मैंने कभी एक गिरा हुआ फूल भी नहीं उठाया
मैं कभी एक शब्द भी नहीं लिखूँगा / इडास्सेरी बाग़ के फूलों के बारे में

नदियों और प्रेतों के बग़ैर एक दुनिया / हवेलियों के बग़ैर एक दुनिया

हाँ, मुझे याद है / बहुत पहले किसी ने मुझे पुकारा था
'उन्नी' कहकर नहीं / 'क्डतन' कहकर।

अर्थ ग्रहण के लिए जान लें कि 'उन्नी' उच्च जातियों के लिए सम्मानसूचक सम्बोधन है जबकि 'क्डतन' निम्न जातियों के लिए हीनताबोधक सम्बोधन। आत्मकथात्मक शैली में लिखी उनकी बहुचर्चित 'आइडेंटिटी कार्ड' कविता प्रेम और जाति की विडम्बनापूर्ण पारस्परिकता का सच पेश करती है। अपने कॉलेज के दिनों को उधेड़ता कवि उस लड़की को याद करता है जिसने ख़ुद पहलक़दमी करके दोस्ती की थी। धीरे-धीरे यह दोस्ती अंतरंगता में ढली। वे आपस में टिफिन साझा करने लगे। लड़की हिंदू और लड़का ईसाई। लड़की यह जानती है कि लड़का ईसाई है मगर उसे यह भ्रम है कि वह उच्च जाति का (सीरियन) है। इस बीच लड़के का आइडेंटिटी कार्ड खो जाता है। वह लड़की को मिलता है। कार्ड में वज़ीफ़े की प्रविष्टियाँ हैं। इससे लड़की को पता चलता है कि उसका प्रेमी दलित है। कविता इस जाति आख्यान की परिणति का ख़ुलासा नहीं करती। उसकी अंतिम कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार दर्ज होती हैं— 'इन दिनों मैं नहीं देखता/ दूसरों से बेपरवाह साथ बैठे लड़के लड़कियों को/ चले जाएँगे वे कुछ समय बाद/ ताज्जुब नहीं वे एक हो जाएँ/ नहीं होंगी लाल स्याही से घसीटकर लिखी इबारतें/ उनके आइडेंटिटी कार्डों में।'

पारम्परिक विश्वास और नये (ईसाई) धर्ममत में तालमेल बिठाने में कई पीढ़ियाँ खप गयीं। स्थिति अब भी सहज नहीं है। आज की पीढ़ी भी दो विरासतों के मध्य 'सामंजस्य का तनाव' झेलती दिखाई देती है। पुरखों की संस्कृति के साथ तीन-चार पीढ़ी पहले अपनाए गये धर्म की संगति का मुद्दा अभी तक अनसुलझा है। एस. जोसेफ इस तनाव को अपनी कविता का विषय बनाते हैं। 'टॉम' शीर्षक रचना में वे तनाव का विस्तार करते हुए उसे राजनीतिक संदर्भ तक ले जाते हैं। टॉम परिवार का सदस्य है। कवि का छोटा भाई—

हम रहते थे मंत्रवाद और ख्रीस्तयाग के बीच / अंतिम संस्कार चर्च में और समाधि पवित्र बगीचे में
टॉम और घर के (कुछ) सदस्य केरल कांग्रेस के साथ गये / हम कम्युनिस्टों के साथ।

एम.आर. रेणुकुमार (1969) अपनी आसान भाषा, संश्लिष्ट भाव, जेण्डर संवेदी लहज़ा और बिम्ब बहुल कविता के लिए जाने जाते हैं। वे प्रकृति के साथ एकाकार होकर रचने वाले विरल कवियों में गिने जाते हैं। उन्हें प्रकृति की विराटता और विशालता उतनी आकृष्ट नहीं करती जितनी उसकी लघुता। यही कारण है कि हाथी या बाघ से वे कोई निकटता महसूस नहीं करते। चींटी, टिड्डा, केंचुआ, छोटी वनस्पतियाँ उन्हें आकर्षित करते हैं। उनके साथ वे सहज होते हैं। रेणुकुमार भविष्योन्मुखी कवि हैं। मूलनिवासी मतवादियों की तरह वे न तो सुदूर अतीत में 'अपना शासन' खोजकर उसमें रमते हैं, न उस शासन की पुनर्स्थापना के सपने देखते हैं और न सांस्कृतिक अस्मितावादियों की तरह दलितवाद का गौरवान्वीकरण करते हुए जाति-पहचान के सुदृढ़ीकरण का नारा देते हैं। उनकी कविताओं की सामग्री प्राय: स्मृतिकोष से आती है। इसमें बचपन के अनुभव मुख्य स्रोत हैं। दलित जीवन इन अनुभवों को ख़ास बनाता है। अपनी दलित पृष्ठभूमि को लेकर उनमें हीनताबोध नहीं झलकता। बचपन में देखी-भोगी ग़रीबी, अभाव, उपेक्षा से उनकी स्मृति का बड़ा हिस्सा निर्मित हुआ है लेकिन गाँव की मासूमियत, हरियाली, ख़ूबसूरती, सुकून और भव्यता भी स्मृति का अंश है। उल्लेखनीय है कि पहले हिस्से को याद करते हुए वे कड़वाहट का आभास नहीं कराते जबकि दूसरे हिस्से का स्मरण रससिक्त होकर करते हैं। अपने पैतृक घर-परिवार को लेकर भी रेणुकुमार 'नॉस्टलेजिक' प्रतीत होते हैं। यह नॉस्टलेजिया उनकी कई कविताओं में झलक मारती है— 'कमरे का कोना/ आलमारी के पीछे पत्तायम/ और/ दीवार के/ बीच का/ अँधेरा कोना/ आँगन की सीमा पर/ अकेले वृक्ष की छाया/ पिता द्वारा माँ की

पिटाई होने पर/ प्यार करने पर/ मैं यहीं छिपता था।/ नये घर में/ छिपने के लिए जगह नहीं/ पत्नी या बच्चों के चिल्लाने पर/ मुझे पुराना घर और/ आँगन याद हो आते हैं।' ('यादों के बारे में एक कविता')।

रेणुकुमार के चार संग्रह प्रकाशित हुए हैं— *केणि निलङ्डळ्ळिल* (जाल क्षेत्र में, 2005), *विषक्काय* (विषैला बीज, 2001), *पचकुप्पी* (हरी बोतल, 2011) और 2016 में *कोतियन* (2016 भुक्खड़ या लोभी)। रेणुकुमार की तमाम कविताएँ एक दलित बालक द्वारा (विमर्शपरक दलित दृष्टि के सायास आरोपण से मुक्त) अपने परिवेश और दुनिया को देखकर उपजी प्रतिक्रियाएँ हैं। इसके अतिरिक्त, वे एक दलित पृष्ठभूमि वाले चिंतनशील युवा की प्रश्नाकुल दार्शनिकता का परिणाम भी हैं। उनकी दार्शनिकता सतह पर दिखती नहीं। सामान्य काव्य उपकरणों, बेहद मामूली प्रतीत होते दृश्यों और अ-जटिल भाव रूपों से रची कविताएँ चमत्कृत नहीं करतीं। पहले संग्रह की 'अलच्चु वीणु पेय्तु' (घुघुआती बारिश) कविता में वे एक कंट्रास्ट बनाते हैं। रात भर की मूसलाधार बारिश के बाद सुबह जब हमउम्र बच्चे पानी में खेल रहे हैं तो उसी वक़्त एक बालक अपनी दादी माँ को गीले चूल्हे और भीगी लकड़ियों से अदहन डालने के कठिन काम में उलझा देख रहा है। वह भूख से व्याकुल है और रातभर टपकते छप्पर में चटाई यहाँ-वहाँ करते बिताई है। रेणुकुमार की 'मिण्डा प्राणि' (मूक प्राणी) कविता केरल के एक औसत दलित की दैनंदिनी है। पौ फटने से पहले सोकर उठा दलित (बँधुआ) मज़दूर देर रात गये किन-किन परिस्थितियों से गुज़रता है, यह कविता उसका असमाप्य ब्योरा प्रस्तुत करती है। किंचित लम्बी इस कविता का समापन अंश है—

हँसिये को थोड़ा बनाओ धारदार / कपड़ा पछीटने के पत्थर पर घिसते हुए
जाओ मालिक के ख़ेत / घास काटने
करो इंतज़ार भटके राहगीर का / जो घास का बोझा उठाते हाथ लगाएगा
इकलौते नारियल के तने से बनी / कामचलाऊ पुलिया को पार करते
बचाओ ख़ुद को / गिरने फिसलने से
पी ली गयी हो जब कांजी / धो दिया गया हो बरतन
सारा ख़ालीपन भीतर (उतारो) / दिया बुझा कर
बाएँ बाजू को तकिया बनाकर / एक पाटी पकड़
बिना चद्दर / रात काटो
कौआ बोले / इससे पहले उठ जाना होगा।

रेणुकुमार अपनी जेण्डरसंवेदी दृष्टिकोण के लिए भी जाने जाते हैं। उनकी कई कविताएँ स्त्री के दु:खमय जीवन का शब्दचित्र लगती हैं। 'स्त्री-जीवन' में मौजूद अतिव्याप्ति दोष से बचने के लिए इसे दलित स्त्री का दुख कहना चाहिए। अपनी कविताओं में आयी स्त्रियों को यद्यपि उन्होंने किसी श्रेणीपरक नाम से अभिहित नहीं किया है परंतु परिवेश और जीवन-स्थिति उन स्त्रियों के दलित होने का ही संकेत देते हैं। ये कविताएँ उनके रचनाजगत के 'एक और विषय' के रूप में न होकर उनकी काव्य संवेदना के अभिन्न अंग के रूप आयी हैं। रेणुकुमार स्त्री-पुरुष भेद में निहित विशेषाधिकार पर अपनी एक कविता 'कूट्टुकारि' (सहेली) में इस तरह प्रकाश डालते हैं— 'एक बार/ रास्ते पर/ कड़ी धूप में/ उसे देखा।/ बिना फाड़े हुए/ नारियल के कच्चे पत्तों की छाँव में बैठ/ वह पत्थर तोड़ती है।/ उसके चेहरे पर पुराना हठीलापन नहीं।/ पत्थर तोड़ते/ क़र्ज़ देते/ मुझे हराने पर/ उफनने वाली/ वह पुरानी ज़िद।' एक ही सामाजिक पृष्ठभूमि से निकले दो लोगों की ज़िंदगी एक-सी क्यों नहीं है? वह लड़की जो खेल में आगे थी, हराती थी, हठीली थी, आज कड़ी धूप में पत्थर तोड़ रही है। जहाँ वह पत्थर नहीं तोड़ती वहाँ भी उसकी ज़िंदगी सुखरहित है। एक बेजान ढाँचे में क़ैद जीवन किस तरह यंत्रवत हो जाता है यह 'बोर है ज़िंदगी' कविता में निबद्ध है। दो भागों में लिखी इस कविता का दूसरा भाग ध्यातव्य है— 'रात में/ चौंककर वह/ ढूँढती है/ पौ फटने को/ और कितना समय बाक़ी।/ दिन के/ नुकीलेपन में/ छिलती वह/ ढूँढती है/ रात होने को/ और कितना समय बाक़ी।/ बिना जले/ पत्रों

में/ माचिस से वह/ लिख देती है/ उजियाला/ होते ही अँधियारा हो जाए/ अँधियारा/ होते ही/ उजियाला हो जाए।' दिन-रात का फ़र्क़ मिट जाना जीवन का मशीनी हो जाना है। स्त्री इस स्थिति से छुटकारा पाने को छटपटा रही है। उसकी छटपटाहट व्यक्त होकर भी परिणामरहित है। उस स्त्री की ऐसी निष्फल आकुलता बहुत मार्मिक है।

अन्य दलित कवियों से रेणुकुमार इस मायने में अलग हैं कि वे अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम अर्थात् भाषा को विचार का विषय बनाते हैं। किसी गम्भीर और ईमानदार कवि की तरह वे भी भाषा को अपने भावों के पूर्ण प्रकटन में असमर्थ पाते हैं। 'अनन्य' कविता देखिए— 'मिटती नहीं/ कुछ निशानियाँ/ किसी मूसलाधार बारिश में/ उखाड़ती नहीं/ कुछ क़दम/ कोई बहती धारा/ बुझाती नहीं/ कुछ लपटों को/ किसी हवा की ताक़त/ उठाती नहीं बोझ/ कुछ शब्दों का/ किसी भाषा की लिपि।' इसी तरह 'वर्णितलिपि' कविता ज्वलनशील अनुभवों के शब्दांकन की विफलता का आख्यान है। कवि को लगता है कि इस मामले में चींटी को समर्थ आदर्श या अनुकरणीय प्राणी मानना चाहिए। इस कविता की आख़िरी पंक्तियाँ हैं— 'चींटियों को पता है/ बिना पाँव जले/ जुबान सूखे बिना/ पूरी पृथ्वी/ घूम आना/ मील के पत्थरों पर/ दूसरी भाषा की/ वर्णितलिपि/ खींच लेना/ गुहाचित्रों में/ एक दिन/ फूटने के बीज/ छिपाकर रखना।' भाषा, विचार और विचारधारा ये सभी अक्षम, अपर्याप्त हैं। इसे रेखांकित करते हुए रेणुकुमार बड़ी मूल्यवान बात कहते हैं कि इसका कारण ज़िंदगी है। ज़िंदगी, जिसे किसी फ्रेम में बाँधना मुमकिन नहीं— 'यह वर्गों या वृत्तों में/ कभी फिट नहीं होती/ यह लय-ताल या धुन में/ कभी ढल नहीं सकती।/ किसी चौखटे में फिर/ कविता कैसे जड़ी जा सकेगी/ जबकि ज़िंदगी ही इस तरह है?'

अगर एस. जोसेफ और एम.आर. रेणुकुमार दलित पृष्ठभूमि वाले 'खाँटी कवि' कहे जाएँगे तो एम.बी. मनोज (1972) दलित अस्मितावादी 'शुद्ध कवि' की कोटि में आएँगे। ये सब अलग-अलग श्रेणी के नैसर्गिक कवि हैं। एम.बी. मनोज के चर्चित काव्य संग्रहों में *कूट्टन्तटयुटे एषुपतु वर्षङ्ङळ* (भीड़ में एकांत के सत्तर वर्ष, 2004) और *कनुन्नीलोरु अक्षरवुम* (कोई शब्द नहीं देखता, 2007) हैं। कवि के पहले संग्रह में जातिबोध का दंश बहुत गहरा है। वे मानते हैं कि विगत सत्तर साल दलित कम्युनिस्टों के झाँसे में रहे। उनकी अस्मिता बन न सकी। उस पार्टी में रहकर दलित अस्मिता के उभार का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। मनोज ने इसके लिए एक नया शब्द गढ़ा— 'कूट्टांतता'=कूट्टम+एकांतता (हुजूम+तनहाई)। यह पदबंध कम्युनिस्ट पॉलिसी में दलितों की स्थिति का सूचक है। दलित मार्क्सवादी संगठनों और कम्युनिस्ट पार्टी में रहकर भी बेपहचान रहे। उन पर भरोसा नहीं किया गया। उन्हें सामने नहीं लाया गया। उनकी भूमिका भीड़ बढ़ाने तक ही सीमित रखी गयी। फिर, उन्हें हाशिये पर धकेल दिया गया। मनोज बचपन की उन स्मृतियों को ख़ास तौर पर कविता का विषय बनाते हैं जो जाति अवमानना और कम्युनिज़म दोनों से जुड़ती हैं। आत्मपरक शैली में लिखी पहले संग्रह की कविताएँ आत्मवृत्त का हिस्सा ही प्रतीत होती हैं। कवि के पिता कम्युनिस्ट नेता ए.के. गोपालन के प्रशंसक हैं। अपनी एक कविता में वे बताते हैं कि जब पिता गोपालन की तारीफ़ कर रहे होते, वे अपने नाटे क़द और बदहाल घरेलू स्थिति को लेकर शर्मिंदगी अनुभव करते। कमतरी के अहसास से वे कभी मुक्त नहीं हो सके। उस अहसास को उन्होंने जज़्ब करना भी सीख लिया— 'कोई पूछता कहाँ है तुम्हारा मकान/ मैं ग़लत पता बताता/ बिना शर्म का प्रदर्शन किये/ बिना हकलाए।' मनोज स्वीकार करते हैं कि ग्रंथि ने उन्हें अलग-थलग रहने को प्रेरित किया। वे अंतर्मुखी होते गये। एक कविता में वे लिखते हैं कि स्कूल में एक नाटक के मंचन में उन्हें भूमिका मिली। उन्हें उम्मीद थी कि लोग उन्हें हाथों-हाथ लेंगे लेकिन मलिन बस्ती में उनकी झोपड़ी की तरफ़ कोई नहीं आया। उनकी 'बालपाठम्' कविता उस बचपन में झाँकने की खिड़की है जो ग़रीबी और उपेक्षा के दबाव में कुंठित हो चला है। 'अनाम' शीर्षक कविता में वे अपने को नगण्य बालक के रूप में देखते हैं। छोटी गर्दन और खुरदुरी हथेलियों वाले इस

बच्चे की स्मृति में बसे पिता उसे नहला रहे हैं, चंदन के टुकड़े से उसके शरीर को रगड़-रगड़ कर श्वेतांग बनाने की विफल चेष्टा कर रहे हैं। 'युनिवर्सिटी : एक पाठ' कविता उच्च शिक्षा संस्थानों में दलितों की स्थिति पर एक बयान है। यहाँ सभी महत्वपूर्ण पदों पर तो सवर्ण बैठे हैं। न्याय की उम्मीद ही बेमानी है। यहाँ दलित परिवारों से आये बच्चे क़दम-क़दम पर अपमानित होते हैं— 'मुझे राही समझकर/ वाचमैन तीखी निगाह डालता है/ सिगरेट का निचला हिस्सा बरसाती पानी में फेंकता है/ दो, चार, छह और कभी-कभार तिपहिए/ सामने से गुज़रते हैं।/ ... 'एक काला नन्हकू चीखा है'/ अनुभाग अधिकारी कहता है/ 'कुली की तरह लगता है'/ क्लासमेट की टिप्पणी हैं/ हर तरफ़ उपहास।' दलित स्त्री की रूढ़ छवि मनोज की कविताओं में मिलती है— काली, मरियल, अस्त-व्यस्त औरत के रूप में। 'भार्या' कविता की स्त्री ऐसी ही है। वह सूखी लकड़ियाँ बटोरती है, बेचती है और उस पैसे से अपने बच्चों का पेट पालती है। उसी पैसे से रोज़ अपने मनसेधू के लिए एक बण्डल बीड़ी और माचिस की डिब्बी ख़रीदती है। मनसेधू ऐसा जो उसे हर दिन पीटना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। पीड़ित स्त्री से समानुभूति मनोज को संवेदनशील बनाती है। 'अम्मा' कविता में वे कहते हैं— 'मैं एक संत पिता के मुक़ाबले/ एक ख़राब माँ को पसंद करता हूँ।' 'परीक्षा दे रहे बच्चे' कविता में उनका प्रश्न है— 'एक लेखक के रूप में मैं/ क्यों नहीं कमा सकता?' इस कविता के अंत में उनका स्वर व्यंग्यात्मक हो जाता है— 'गुडबाय कॉमरेडो .../ आप चर्चा जारी रखें/ कम ऑन, वहाँ पीछे की कतार से/ आप ही, कम ऑन, क्या प्रॉब्लम है?/ डेढ़ सेंट में झोपड़ी/ गगनचुम्बी फ़्लैटों से घिरी/ टायलेट नहीं, यूरिनल नहीं/ इसे बस भूल जाओ।'

मनोज के दूसरे संग्रह का शीर्षक *कनुन्नीलोरु अक्षरवुम* पोइकयिल अप्पचन के एक गीत से लिया गया है। दलित इतिहास से बेदख़ल कर दिये गये हैं। यह कवि के गुस्से का सबब है। वह इतिहास में अपने पुरखों का प्रवेश चाहता है। इस दस्तावेज़ीकरण के लिए वह कविता को वैकल्पिक स्रोत की तरह देखता है। कवि अपने बेदख़ल समुदाय को यहाँ बहाल करेगा। कविता में एम.बी. मनोज भदेस, अशालीन, अश्लील शब्दों के इस्तेमाल से परहेज़ नहीं करते। दलित जीवनानुभवों और संवेगों की यथार्थ अभिव्यक्ति इनसे बचकर नहीं की जा सकती। इस संग्रह की कविता 'सर्वे ऑफ़ इण्डिया' में उन्होंने बड़ा ज्वलंत मुद्दा उठाते हुए दलित और गाय के बीच तुलना की है। जातिवादी तराजू पर गाय हर हाल में गुरुतर साबित होती है। गाय विषय है जबकि दलित वस्तु हैं। कविता का अंत इन पंक्तियों से होता है—

कौन है ज़्यादा भारी / गाय या चण्डाल
लज्जित मत हो / एक मरी गाय
पाँच जीवित चण्डालों के / भार के बराबर है
एक ज़िंदा गाय / पचीस करोड़ चण्डालों के समतुल्य है।

अपेक्षाकृत कम लिखकर भी महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले कवियों में के.के. शिवदास (1972) का नाम लिया जा सकता है। उनके काव्य संग्रह *सस्यजन्मम्* (वनस्पति जीवन) ने अध्येताओं का ध्यान आकृष्ट किया है। शिवदास दलित जीवन में व्याप्त उदासी, टीस और नाउम्मीदी को बख़ूबी रेखांकित करते हैं। मगर वे यहीं पर नहीं रुकते। दमनकारी सामाजिक ढाँचे में कुचले और विकृत कर दिये गये 'दलित स्वत्व' के पुनर्वास की सम्भावनाएँ तलाशने का उपक्रम भी उनके यहाँ मौजूद है। उनके संग्रह की प्रतिनिधि कविता 'सस्यजन्मम्' द्रष्टव्य है— 'जड़ों से साँस लेते हुए/ पत्तों के भार से झुकते हुए/ शरत् के लिए गीतों का गीत/ पक्षिविज्ञानी को भ्रमित कर देने वाले पक्षी।/ सर्दी में तन्वंगी के लिए एक फल/ तनहा प्रेमियों के लिए चबाने को पत्तेदार औषधि।/ युद्ध में मृत लोगों के लिए शाखाएँ/ माँओ के लिए छाते/ वृद्ध पिताओं के लिए हरी डण्डी।/ भिखारियों को हाज़त के लिए ओट/ और वेश्याओं को कपड़े उतारने के लिए।/ दोपहरी में कुसुमित/ दक्खिनी हवा में झूलते/ फूल वाली

लड़की के लिए एक स्त्रोत।/ निषिद्ध की परिधि पर/ एक वनस्पति का मेरा जीवन एकाकी खड़े रहने को।/ उपयोगी होना चाहिए इसका काठ/ उनके लिए जिनके ईश्वर मर गये हैं।'

वरिष्ठ पीढ़ी के कवि एस.के. रघु का काव्य संग्रह *द्रविड़ दैवंगल* (द्रविड़ देवता) 1990 में आया। इस संग्रह की मुख्य प्रस्तावना है कि ब्राह्मणवादी सांस्कृतिक हमले से मुक़ाबला करने के लिए द्रविड़ देवताओं का आह्वान किया जाना चाहिए। इन देवताओं में ही आर्य वर्चस्व को तोड़ने की क्षमता है। द्रविड़ देवताओं में रघु करुमादिक्कुट्टन, कनियन, चावरू, मादन, मरुत और महाकाली आदि के नाम गिनाते हैं। इनके समकालीन कवि पी.के. अय्यप्पन के संग्रह *पावम् यक्षन* (दरिद्र यक्ष) में असहाय लोगों की त्रासदी के चित्र हैं। शीर्षक कविता का काव्य नायक यक्ष मूलनिवासियों का प्रतिनिधि बनाकर पेश किया है। यक्ष जंगल में अपने लोगों को इकट्ठा करता है। अपने पुत्र की मृत्यु पर उसका विलाप समस्त आदिद्रविड़ों का शोकगीत बन गया है।

केशवन कण्णनकुषि के संग्रह *मोचन वीदियिल* का केंद्रीय आग्रह है कि दलितों की मुक्ति स्वयं दलितों के द्वारा ही सम्भव है। केशवन धर्म और ईश्वर के कट्टर विरोधी हैं। वे स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य जैसे अंधविश्वासों से उबरने की ज़ोरदार सलाह देते हैं। प्रकृति में व्याप्त सहज सुख को इन अंधविश्वासों ने नष्ट कर दिया है। कोट्टयम देवदास अपनी कविता 'आरुदे रामन' (किसके राम, 1995) में पूछते हैं कि सवर्ण हितों के रक्षक राम दलितों के आराध्य कैसे हो सकते हैं? वे इस विरोधाभास पर भी अँगुली रखते हैं कि राम को पूजने वाला समाज राम और रामकथा के स्रष्टा वाल्मीकि को और उनके वंशजों को सामाजिक पदानुक्रम में सबसे नीचे कैसे रखता है!

एम.टी. जयमोन 'ओरु स्वप्नम्' (एक स्वप्न) कविता में जातिवादी शोषणतंत्र में निचुड़ते दलितों की अगाध व्यथा का मार्मिक चित्र खींचते हैं। दलित जानवरों की तरह गर्मी, वर्षा, पतझर यानी वर्ष भर खेतों में खटते हैं। इस तरह मालिकों के बखार अन्न से भरे जाते हैं। 'मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसाँ हो गयीं' की तर्ज़ पर जयमोन यह भी जोड़ते हैं कि दलित ही वे लोग हैं जिन्होंने 'आँसुओं का सागर' पार कर लिया है। वे ही 'अश्रुगाथा' सुना सकते हैं। निराशा और निरुपायता के मध्य वे सपना सँजोते हैं। यह बात अनंत दर्द सहते रहने की उनकी क्षमता साबित करती है— 'धरती उनकी जो इसे जानते हैं/ जिन्होंने इसमें/ अपने आँसुओं का नमक, और/ रक्त की श्यामलता उँडेली है।'

कैप्पुष जयराज अपनी 'कालप्रश्नम्' कविता में दलित परम्परा में मौजूद 'प्रेतपूजा' का विनियोजन करते हैं। 'चाव' (प्रेतात्माओं) से प्रश्न पूछकर शंका समाधान किये जाने की रवायत रही है। इस कविता में 'चाव' से दलित ये सवाल करते हैं— किसका शासन है? क्या सरकार में पूरा दलित प्रतिनिधित्व है? वे शोषित क्यों हैं? प्रशासन में इतना अधिक भ्रष्टाचार और अन्याय क्यों है ... ? कवि संकुट्टी पट्टमकरी अपनी कविता 'कंडकथा' (पहेली) में बताते हैं कि हिंदुओं के तथाकथित महान महाकाव्य पवित्र ग्रंथ नहीं हैं। वे असल में दलित उत्पीड़न के साक्ष्य हैं। 'महाभारत' के उदाहरण से कवि यह समझाता है कि ऐसे ग्रंथों को पूज्य मानना नासमझी के सिवा और कुछ नहीं। 'नीतिक्कु वेण्डि' (न्याय के लिए) कविता में तूवयूर राघवन दलित त्रासदी का चित्र खींचते हैं। उन्हें विश्वास है कि जिस दिन सभी वंचित जन एक होंगे उस दिन यह देश 'भौचक हो जाएगा और काँपेगा'। इस एकता की परिणति महान सामाजिक क्रांति में होगी। दिवाकरन कडवंत्र 'वयलरुकिल ओरु दलित स्त्री' (खेत के पार्श्व में एक दलित स्त्री) में वर्तमान समाज व्यवस्था की भर्त्सना करते हैं जो दलित स्त्री को एक माँ का सम्मान नहीं देता। 'ञङ्ङळ कूट्टम् चेरुम्पोळल' (जब हम साथ-साथ उड़ते हैं) कविता में सी.पी. प्रकाश दलितों को एक साथ आने की ज़रूरत पर बल देते हैं। उनका आग्रह है कि दलित उन नारों को त्यागें जो दूसरों के द्वारा गढ़े गये हैं और उन पर थोप दिये गये हैं। ए.के. राजन अपनी रचना 'ञङ्ङळ शवम् तीनिकळ' (हम लाशभक्षी हैं) में नयी दलित राजनीति तलाशने में लगे लोगों को सम्बोधित कर रहे हैं। वे दलितों की तुलना मांसभक्षी चींटियों से करते हैं जिनके हमले बहुत

सांघातिक होते हैं और जिन्हें आसानी से नष्ट नहीं किया जा सकता। वेट्टियर नानु की कविता 'तिरिच्चरिवु' (अनुभूति) विडम्बनासिक्त आत्मालाप है। इसमें एक दलित पिता अपने पुत्र को कुछ ऐसा करने की सलाह दे रहा है जो असल में वह नहीं चाहता कि उसका पुत्र करे।

वी. गोपालन की कविता 'मुत्तश्शि' (दादी माँ) एक भग्न हृदय कंकालवत् वृद्धा का क्षोभ है। वह सिर पर सूखी लकड़ी का गट्ठर रखे बाज़ार जा रही है। उसका एकमात्र पुत्र वामपंथी कार्यकर्त्ता था जो मारा गया और जिसे पार्टी ने शहीद का दर्जा दिया है। वाम राजनीति को लेकर अपने गहरे रोष के बावजूद वृद्धा चाहती है कि सारे काले खेत लाल हो जाएँ। आइ.के. रवींद्रराज की 'बिना आवाज़' कविता मालिकों का यौन हमला झेलती दलित स्त्रियों की व्यथा कथा है। अपनी दूसरी कविता 'करुत सूर्यम्' (काला सूरज) में रवींद्रराज ब्लैक शक्ति और सौंदर्य का बखान करते हैं। वे चाहते हैं कि अपना स्वातंत्र्य गीत रचने के लिए दलित नयी भाषा सीखें। के.के.एस. दास 'करुमाडि नृत्तम्' में क्रांति का आह्वान करते हैं। करुमाडि एक दलित देवता का नाम हैं। दास सुझाते हैं कि दलित अपनी शक्ति अपने देवताओं से अर्जित करें।

अम्बिदास के. करत्तु 'पोटा मनुष्य' (परे हट मूर्ख मनुष्य) में एक दलित के उफनते अंतर्जगत की यात्रा कराते हैं। आवेगों से भरे इस अंतर्लोक में आक्रोश और कुंठा के साथ करुणा की धारा प्रवाहित है। इस प्रवाह में सभी तरह के अत्याचारों के विरुद्ध प्रतिरोध की उत्ताल तरंगें उठती हैं। शिवदास पुरामेरि (1966) के संग्रह 'चोर्न्नोलिक्कुन्ना मुरि' (टपकता कमरा) की कविता 'पानी के सबक़' का विषाद संगीत इन शब्दों में— 'हृदय में शुरू होती है ख़ुदाई/ शब्दों के पौधे उखाड़ लिए जाते हैं,/ बूँदें बिला जाती हैं/ छाती की पथरीली दरारों में।/ चूसकर सुखा दी जाती हैं मधुर संकल्पनाएँ/ आत्म के अंतरतम की,/ करुणा के झरने/ ज़िंदगी की कविता और संगीत।/ चेतना का गंदला तालाब;/ पवित्र अभ्यारण्य बना दिया जाता है विषैला/ स्थिर और निर्जीव पड़ी रहती हैं धाराएँ/ शीशे में जड़े मौत के नक़्शे की तरह।/ देर सुबह की स्पष्टता/ जब जलती हुई देह ठिकाने लगा दी जाती है/ जब ठण्डी बूँद की तलाश में गहरी जड़/ छूती है सूखा गला।'

दालु की गिनती दलित कवियों में की जाती है पर वे तकनीकी रूप से आदिवासी कवि कहे जाएँगे। उन्होंने आदिवासी जीवन के अनुभवों को शब्द दिये हैं। माला अरय जनजाति से सम्बद्ध दालु के कुनबे ने कभी ईसाई धर्म स्वीकार किया था। भाषा, भाव और शैली के स्तरों पर क्रांतिकारी परिवर्तन के इच्छुक दालु अपने संग्रह *तीक्क़ुरि* (आग के शब्द) में पारम्परिक आचार संहिता या तत्समी सांस्कृतिक मर्यादाओं को उलटने में चेष्टारत दिखाई देते हैं। वे चाहते हैं कि आदिवासी समुदाय 'अधिकारवासी' समुदाय बने—

डर से / हे आदिवासी / अपनी माँ बहनों को व्यभिचार में मत झोंको।
न करो आत्महत्या। / बच्चे सो न रहे हों तो
उन्हें सुनाओ कहानी; / कैसे उनके पुरखों ने रोटी जुटाई थी
कैसे उन्होंने अक्षर और आत्मविश्वास पर पाई थी विजय।
मिटा दो वे क़ानून / जो नकारते हों तुम्हारी रोटी;
हम आदिवासी / अधिकारवासी बनें।

बीनु एम. पल्लिप्पाडु (1974) की कविताएँ अपनी उद्वेगपूरित अभिव्यक्ति के कारण ख़ास नज़र आती हैं। दर्शन, इतिहास और भाषाशास्त्र के त्रिकोण के बीच पनपता यह उद्वेग अपनी जटिलता के चलते अक्सर सम्प्रेषित नहीं हो पाता। जहाँ वे सभ्यता के बड़बोले दावे की छानबीन करते हैं वहाँ उनकी कविता बेशक भीतर उतरती प्रतीत होती है। 'प्रेम (और मृत्यु) की सभ्यताएँ' शीर्षक कविता का प्रारम्भिक अंश द्रष्टव्य है— 'प्रेम/ दो शहीदों की और बलि देकर/ इतिहास के भँवरों और/ सभ्यता की बहारों को पार करता/ बह गया ... / भोर बेला में/ नदी किनारे लगे जाल में/ अपनी हँसी को

दफ़नाकर/ पेट के बल लेटी हुई है वह/ कल उसने बंद आँखों से/ आसमान की करामात देखी थी; / वही आँखें आज बन गयी हैं/ नदी की छोटी मछलियों का भोजन।'

कलेश एस. (1983) प्रेम के कवि हैं। उनकी प्रेम कविताएँ आख्यानपरक होती हैं। आख्यान में कवि की उपस्थिति कविता को प्रामाणिक बनाने की युक्ति है। कलेश इस युक्ति के अकृत्रिम अभ्यासी हैं। उनकी 'सायरन' शीर्षक कविता रक़ीब से काव्यनायक की हमदर्दी के कारण उल्लेखनीय जान पड़ती है। काव्यनायक ने जिसके साथ ज़िंदगी गुज़ारने के सपने देखे वह किसी अन्य की चाहत रखती थी। भग्न हृदय नायक शहर गये रक़ीब को वापस लाने जाता है। यह दीगर बात है कि सायरन की आवाज़ से भयभीत वह खाली हाथ लौटता है। उनकी कविताओं का पहला संग्रह *मुड़ी हुई हेयरपिन* (2011) दलित कविता के संवेदनागत विस्तार का सबूत है। पत्रकारिता में सक्रिय कलेश मुख्यत: परिवार को अपनी कविता का विषय बनाते हैं। उनकी कविता 'जब चाँद निकलता है' अपनी मार्मिक सादगी के कारण उल्लेखनीय लगती है— 'साँझ बेला/ दिन भर/ काले बादलों के पीछे छिपा/ दूज का चाँद/ बाहर आ रहा है।/ स्कूली बच्चे उत्फुल्ल दोस्तों के बीच/ पाँच तीस की बस से लौट रहे हैं/ प्रेम का पुश्ता पार करते।/ पकती फ़सल के ऊपर/ हँसिए के आकार में पक्षी-दल/ घर आ रहे हैं/ दिन भर के कठिन श्रम के बाद/ खेतों से लगे घर में/ बिना जगत वाले कुएँ की तरफ़/ हाथ में बच्चा लिए एक औरत/ कर रही इंतज़ार अपने पति का/ चाँद को चूम रही बच्चे की आँखें/ और होंठ माँ का निप्पल।/ अकेली वही देख सकती है/ बच्चे की आँख में चमकता बाल चंद्रमा।/ कितने बाल चंद्रमा उग रहे होंगे/ आज इस गाँव में...।'

ए.के. वासु (1973) कहानीकार भी हैं। उनके वैचारिक लेख पत्रिकाओं में छपते रहते हैं। उनका काव्यसंग्रह *अप्पुकुट्टन जीविक्कुन्नु* प्रकाशित है। वे दलित इतिहास को अपनी कविताओं से सामने लाते हैं। अपने पूर्वजों की स्मृतियाँ आसपास की चीज़ों से रचते हैं। 'चट्टानें, नदियाँ, मशीनें' कविता में वे दलित पूर्वजों की मज़बूती को चट्टानों में देखते हैं। नदियों को वे दलित पुरखिन बताते हैं जिन्होंने पुरखों के आँसुओं को समुद्र में प्रवाहित किया और ज़हरीले खेतों को सोना उपजाने वाला बनाया। बुलडोज़र पर उनका काव्य-कथन है— 'अपनी शक्तिशाली भुजाओं से/ ज़मीन को समतल करते/ ये बुलडोज़र/ अवतार हैं हमारे पितरों के/ रात दिन काम करते/ बिना मज़दूरी माँगे हुए/ और सोते हैं किसी स्लम या पहाड़ी की चोटी पर/ जब तक वे जंग में न बदल जाएँ।' वरिष्ठ साहित्यकार भाषी अरंकत (1958) विद्युत अभियंता हैं। अपनी कविता 'बैल' में वे कोल्हू के बैल से अपनी तुलना करते हुए घूर्णन में खपती ज़िंदगी का विषाद राग गाते हैं। गोल-गोल घूमते हुए दोनों एक-से लगते हैं। अंतर सिर्फ़ पूँछ का है। कविता के अंत में वे बैल से कहते हैं— 'तुमको नाथे हुए इंच भर की इस डोरी ने/ तुम्हारे जीवन को मात्र कोल्हू के चक्कर में सीमित कर दिया है।/ भला कैसे यह पुराना कोड़ा/ तुम्हें सदा-सर्वदा के लिए तेल की घानी के चक्कर लगवा सकता है/ एक मरे हुए शेर की जीवित मौत की तरह?' बालु पुलिनेल्ली (1966) 'इतिहास' शीर्षक अपनी कविता में नये सूचना समाज की हृदयहीनता की तरफ़ ध्यान दिलाते हैं। मीडिया संचालित समाज की सूखती संवेदना बरसों-बरस लोगों को छाँह देते बरगद के धराशायी होने के वक़्त प्रकट होती है— 'बरगद का वह पुराना पेड़ कल गिर पड़ा/ जब आख़िरी चिड़िया ने अपना घोंसला छोड़ दिया/ जब अंतिम बटोही अपने रास्ते चला गया/ लोगों को इसकी ख़बर लगी/ अख़बारों के ज़रिये नहीं/ इस खबर की कोई क़ीमत नहीं थी/ कोई स्कैंडल नहीं छिपा था इसमें/ न कोई महान उपलब्धि।/ इसके तले कभी किसी बौद्ध भिक्षु ने/ विश्राम भी नहीं किया था।/ इसे किसी चबूतरे द्वारा घेरा नहीं गया था/ कोई मूर्ति नहीं स्थापित थी।/ फिर भी इसका अपना इतिहास था/ जब दोपहरी का सूरज गुस्से में तपता था/ यहाँ शीतल छाया होती थी/ टपाटप बारिश के वक़्त/ यह छाता तान देता था।' अपनी 'शीर्षकरहित' कविता में चर्चित चित्रकार और अग्रणी दलित बुद्धिजीवी शाजु नेल्लाइ पिकासो जैसे तमाम विश्वप्रसिद्ध पेंटरों की, और उनके

रंग संयोजनों की चर्चा की पृष्ठभूमि में अपने गाँव के एकरंगी होने को रेखांकित करते हैं। जबकि पेंटिंग्स के रंग धूसर, नारंगी, लाल आदि हो सकते हैं, तब कवि का गाँव काले रंग में जड़ीभूत है। काला रंग अँधेरे का है। गाँव अभी उजाले से दूर है। कविता के अंत में एक मटमैली उम्मीद आकार लेती दिखती है। जयन बाबू अपनी कविता 'लेखनी' में क़लम के महत्त्व को बड़े प्रतीकात्मक ढंग से उभारते हैं— 'एक बार मैंने निगल ली अपनी क़लम/ भीतर चिपक गयी है यह/ मेरा दिमाग इस पर चिल्ला रहा है/ और फटकार रहा है/ इसकी नोक मेरे अँगूठे में चुभ गयी है/ ज़ोर से चीखता हूँ मैं/ भीतर के प्रिंटिंग ब्लॉक में/ अक्षर बना रही है यह/ निगली हुई क़लम/ शून्य से बाहर लाए गये/ दिन की तरह है।' जॉनसन चीरंचिरा (1912, वास्तविक नाम जॉनसन के. जोसफ) कवि-विचारक होने के साथ सामाजिक कार्यकर्त्ता भी हैं। उनकी कविता 'मौन' जीवनांत के बाद का शब्दचित्र है— 'जब मैं एक ख़ुदकुशी हत्यारा था/ बहस करता था भगवान से/ नफ़रत करता था मृतकों से/ आज अनाथ हैं हम— मैं और मेरी पत्नी/ क्योंकि सायनाइड खाने वाले हमारे बच्चे/ फलने-फूलने के लिए इस धरती पर नहीं बचे/ चर्च के पिछवाड़े और आसपास/ कबूतर ढूँढते हुए/ पत्नी बोली : 'पागल हैं हम'/ अविचलित मेरा मौन बहता रहा/ पानी में बहती लकड़ी की तरह।' बी. मधुकुमार की कविता 'खिलौने' चित्त के अनुकूलन का संकेत करती हैं। कवि को खिलौनों में हाथी पसंद है। काले रंग का हाथी मासूमियत से अपनी पूँछ हिलाता रहता है। महावत के इशारों पर चलता है। उसके होने का सबूत उसकी लीद है। कवि भी उसे नियंत्रण में रख सकता है और उससे मनोनुकूल काम ले सकता है। कवि-निबंधकार राजेश के. एरुमेली (1981) की वर्णनपरक कविता 'मकान की छवाई' ओणम की तैयारियों का विवरण पेश करती है। अब खाने के आइटम बदलेंगे। कल की ठण्डी लपसी और कांजी की जगह गरम इडली, सांभर, लाल मिर्च में सीझी सूखी मछली मिलेगी। छप्पर छाने वालों को पीने के लिए ताड़ी दी जाएगी। उन्हें एक की बजाय पाँच सेर चावल मिलेंगे। मिट्टी तेल वाले दिये की बाती तेज़ कर दी जाएगी। कुल्हड़ भर मट्ठा मिलता, ख़ाली होता और भरा जाता रहेगा। टिप्पणीकार और फिल्म समीक्षक सचिन पी.जे. (1982) की 'मेरी चीज़ें' शीर्षक कविता भी विवरणात्मक है। लेकिन, कविता के अंत में रचनाकार का मुखर हस्तक्षेप उसे विमर्शात्मक दिशा दे देता है— 'धान के खेत नहीं मेरे घर के पास;/ खेतों के पार कोई रेलवे लाइन नहीं/ दूर क्षितिज पर कोई पर्वत नहीं/ पहाड़ियों के बीच सूरज का खिलना नहीं;/ ऊपर आकाश में पक्षी नहीं।/ सामने अहाते में/ सागौन का पेड़ था/ बहन के दहेज के लिए नियत/ विवाह के बाद बहन उसे साथ लेती गयी।/ पास ही एक छोटा-सा तालाब/ उसमें ज़रा-सा पानी/ 501 नं. के साबुन से धोता हूँ अपने कपड़े।/ मेरे लिखने के कार्डबोर्ड पर बने चित्र में तीन राजहंस हैं/ मैं उनके बीच एक कौआ चिपकाऊँगा।'

III
दलित स्त्री कविता

यह कहने में संकोच हो सकता है कि दलित अस्मिता ने साहित्य आंदोलन को जन्म दिया है, मगर यह मानने में कोई दिक़्क़त नहीं कि दलित लेखन ने दलित अस्मिता को रूपाकार देने में मुख्य भूमिका निभाई है। आंदोलनधर्मी साहित्य अपनी तीव्रता, परिमाण और अस्थिर पैटर्नबद्धता के कारण विशिष्ट होता है। परिमाण का मुद्दा ग़ौरतलब है। यों तो औसत रचनाकार हर वक़्त सक्रिय रहते हैं मगर उनको ज़्यादा तवज्जो नहीं मिलती है। साहित्यांदोलन के दौर में औसत और ग़ैर औसत के बीच की रेखा धुँधली हो जाती है। प्रतिरोध में उठे हर स्वर का संज्ञान लिया जाता है। दलित साहित्यांदोलन के बारे में तो 'औसतपन' का मुद्दा ही अप्रासंगिक लगता रहा है। दो पीढ़ियों यानी चार दशकों के बाद वहाँ एक 'वाद' के रूप में दलित स्त्री साहित्य आया। तब तक बहुत कुछ निथर चुका था। दलित स्त्री साहित्य इसीलिए गुणवत्ता के मामले में इक्कीस ठहरता है और स्थापित साहित्यिक मानकों को गम्भीर

चुनौती दे पाता है। मलयालम के दलित साहित्यांदोलन में स्त्रियों की रचनाशीलता इसी तरह की है। उस आंदोलन में दलित स्त्री कविता पर अलग से चर्चा आवश्यक प्रतीत होती है जिससे दलित सृजन के विकासक्रम को सम्पूर्णता में समझा जा सके।

गद्य लेखन, आलोचना या कथा साहित्य में दलित स्त्रियों की संख्या और सक्रियता वैसी नहीं है जैसी कविता में। बहुत सम्भव है आने वाले दिनों में यह अनुपात सुधरे। वरिष्ठ पीढ़ी की दलित स्त्रियों की प्रारम्भिक कविताएँ अभिधामूलक और प्रबोधनपरक थीं। फिर जल्दी ही उनका रूप बदला और अभिव्यक्ति में संश्लिष्टता आयी। आक्रोश सतह से चलकर शिराओं में प्रवाहित होने लगा। जज़्ब हुआ गुस्सा दार्शनिक लहज़े में रूपांतरित हुआ। देह से अधिक चेतना को वरीयता प्राप्त हुई। अमूर्त स्पेस में डोलती चेतना नहीं, ठोस जीवन स्थितियों में स्वत्व के पुनर्वास में संलग्न चेतना। ऐसी चेतना सांद्र भाषा में ही प्रतिबिम्बित हो सकती थी। यह भाषा अंतस की टोह लेने वाली, उसके रेशों को रोशन करने वाली, टटके बिम्बों वाली और विलक्षण भंगिमाओं वाली है। विषय विस्तार के चलते इस भाषा का रेंज बड़ा है। बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा शब्द-स्फीति से बचकर मितव्ययिता और अर्थ सघनता को साध पाती है। वस्तु-वर्णन में बरती गयी बेतरतीबी आविष्ट करती है। जड़ीभूत आस्वादन-अभ्यास को तोड़ने और भिन्न जीवन को भिन्न दृष्टि से देखने की अपरिहार्यता का अहसास इसके बाद ही हो पाता है। वर्चस्वशाली संस्कृति उग्र प्रतिरोध को बहुत अदृश्य तरीक़े से प्रोत्साहित करती है। प्रतिरोध की शर्तें और नियमावली तब उसी की रहती हैं। दलित स्त्री रचनाकार सत्ता के इस खेल से परिचित प्रतीत होती हैं। वे उस जाल में नहीं उलझतीं। अनुभव, आकांक्षा और अभिव्यक्ति को स्वायत्त रख पाने का हेतु यही है।

वलसला बेबी (1947) वरिष्ठतम पीढ़ी की रचनाकार हैं। वे केरल विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर रही हैं। शिक्षित और उच्चभ्रू समाज के पाखण्डों की उन्हें जानकारी है। इस जानकारी का इस्तेमाल वे अपनी कविताओं में बख़ूबी करती हैं। 'स्त्रीवादी लेखन पर सेमिनार' शीर्षक कविता में उनका तल्ख़ अनुभव व्यक्त हुआ है— 'औरतों के ज्वलंत मुद्दे/ उस तितली की तरह/ जो गिरती हैं कड़ाही से/ आग में।' कविता उस विडम्बना पर अँगुली रखती है जो गम्भीर, वास्तविक, आवश्यक को अगम्भीर, कृत्रिम और अनावश्यक से अपदस्थ कर देती है। सार्थक मुद्दों को फैंसी मुद्दे कुछ इस तरह धकियाते हैं— 'एजेण्डे पर पहला सवाल/ घर में नाइट गाउन नहीं/ सिर्फ़ बरमूडे!/ एजेण्डे पर दूसरा :/ लम्बे बाल नहीं/ सबके लिए बॉय-कट/ एजेण्डे पर तीसरा :/ घरों में किचन नहीं/ ऐसी चीज़ हो बरबाद।' एजेण्डा बढ़ता-फैलता वहाँ तक पहुँचता है जहाँ मुद्दे हास्यास्पद लगने लगते हैं। तब असली मुद्दों का स्पर्श किया जाता
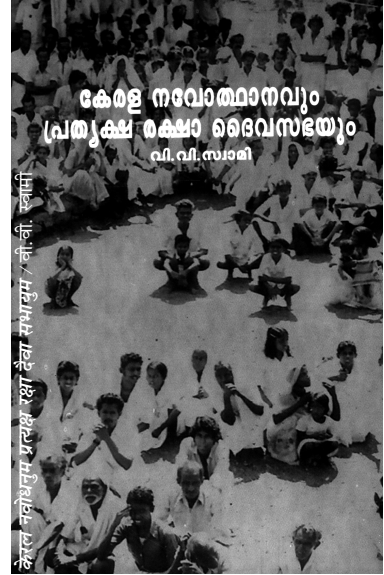
केरल नवोथनुम प्रत्यक्ष रक्षा दैवा सभायुम / वी.वी. स्वामी

वरिष्ठ पीढ़ी की दलित स्त्रियों की प्रारम्भिक कविताएँ अभिधामूलक और प्रबोधनपरक थीं। फिर जल्दी ही उनका रूप बदला और अभिव्यक्ति में संश्लिष्टता आयी। आक्रोश सतह से चलकर शिराओं में प्रवाहित होने लगा। जज़्ब हुआ गुस्सा दार्शनिक लहज़े में रूपांतरित हुआ। देह से अधिक चेतना को वरीयता प्राप्त हुई। अमूर्त स्पेस में डोलती चेतना नहीं, ठोस जीवन स्थितियों में स्वत्व के पुनर्वास में संलग्न चेतना। ऐसी चेतना सांद्र भाषा में ही प्रतिबिम्बित हो सकती थी। यह भाषा अंतस की टोह लेने वाली, उसके रेशों को रोशन करने वाली, टटके बिम्बों वाली और विलक्षण भंगिमाओं वाली है।

है। सत्वहीन स्पर्श को हवा-हवाई ही रहना है। विडम्बना की गुरुता इससे समझी जा सकती है कि सेमिनार में चर्चा सत्र कॉमरेड चला रहे हैं!

के. के. निर्मला (1969-2006) कवि-गीतकार होने के साथ पेशेवर गायिका भी थीं। गायन कौशल का असर उनके रचनाकर्म पर देखा जा सकता है। कविता में उनका स्वर उच्च है। निर्मला मुठभेड़ की तैयारी, ललकार-भाव और प्रबोधन की मंशा के साथ कविता रचती हैं। वे दलित अस्मिता की अभिव्यक्ति का उत्तरदायित्व सँभालती हैं। अस्मिता की अभिव्यक्ति जिस शैली में हो सकती है उसका कवयित्री को भान है। अन्याय और उत्पीड़न का उग्र प्रतिकार करता अपराजित समुदाय ही अस्मिता अर्जित करता है। के.के. निर्मला की 'दण्ड' शीर्षक कविता असत्य की ताक़तों के समक्ष सत्य का आह्वान करती है। कर्म को अपनी ताक़त मानती है। अपने न्यायाधीकरण में केवल कठोर दण्ड का विकल्प रखती है। यह कविता दलित अस्मिता की परिचित आवाज़ है मगर साथ ही दलित स्त्रीवाद का कम सुना गया स्वर भी है—

एक दिन आऊँगी मैं / दबावों के चलते नहीं
न किसी की दासी बन कर / तनी हुई रीढ़ के साथ
किसी के सामने झुकती हुई नहीं / बग़ैर किसी चूक के
किसी को बातचीत की अनुमति दिये बिना / सोचने का समय दिये बिना
आलोचना की परवाह न करके / प्रतिक्रियाओं के लिए अवकाश दिये बग़ैर।
तब मेरा साथी होगा सत्य / कर्म मेरी ताक़त।
अगर कोई अदालत है दुनिया में / होगी वह सिर्फ़ मेरी
होगा सिर्फ़ एक क़ानून / मेरा क़ानून / उसमें होंगे केवल कठोर दण्ड।

पुष्पा जॉय (1912) की कविता 'काली परछाईं' आकांक्षाओं का लेखा-जोखा है। जीवन की कठोर वास्तविकताएँ रचनाकार के सम्मुख हैं। कवयित्री द्रष्टा होने से पहले उन वास्तविकताओं से गुज़र चुकी है। यह गुज़रना असमाप्य प्रक्रिया है। वह प्रेक्षक है और भुक्तभोगी भी तो इसलिए कि अब वह सर्जक के रूप में है। आहत स्वत्व तभी अंतर्दृष्टियों की सृष्टि कर पा रहा है। जीवन में टूटन है तो सम्बल भी है। सर्वथा कुछ भी नहीं। सत्य का साक्षात्कार कराती पुष्पा जॉय की कविता अनुभूत कौंध की एक लड़ी जैसी है—

स्वप्न: खोजता है जो नन्हा मुन्ना / मृत माँ के वक्षस्थल में।
फिर से : टूटे मस्तिष्क की दीवार / अपमानकारी वचन, बेचारा धड़कता दिल।
यहाँ : सूर्यास्त की प्रतीक्षा में टकटकी / और चौकन्नी बधिरता।
उपरांत : विद्रोह की दुंदुभी / शांतप्रेमियों द्वारा लाई गयी।
माँ : छवि जहाँ रोया जा सके / भातृत्व का धागा टूटने पर।
मैं : सपनों का एक बण्डल, उम्मीदों का क़ब्रिस्तान / और वह दुष्ट जिसने यह सब देखा है।
आग : बुरे बच्चों के अंग जो जलते हैं अच्छी तरह।
सुंदरता : काले रंग में पुता एक चेहरा / सम्भ्रम से नष्ट एक आख्यान।
प्रेरणा : आलोचना से पूर्व एक सान चढ़ा चाकू।
प्रार्थना : ज्ञानी का आदेश— / प्रार्थना करो मेरी, मैं हूँ तुम्हारा ईश्वर ...।

अम्बिका प्रभाकरन (1975) की कविताएँ *अडियारदीपम* और *केरल कविता* जैसी पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित होती रहती हैं। पीड़ाजनित रोष उनकी कविताओं का अंत:करण निर्मित करता है। पीड़ा का स्रोत कहीं भी हो सकता है। इस मामले में अम्बिका अस्मितावाद द्वारा प्रदत्त 'अन्य' से परे भी देख पाती हैं। परिवार की त्रासदी पीड़ा का सबसे अंतरंग हिस्सा होती है। छोटी बच्ची इस त्रासदी को सर्वाधिक महसूसती है। माँ पर सतत मँडराता डर उस पर अपनी छाया पहले डालता है। अम्बिका प्रभाकरन की कविता बताती है कि तनहाई कभी निरपेक्ष होकर नहीं आती। उसका एक लैंगिक परिप्रेक्ष्य होता है जो समाज व्यवस्था का उत्पाद है। अकेली स्त्री एकाकी पुरुष से बिलकुल भिन्न है। उसके

उमड़ते-घुमड़ते डर का रंग दूसरा शायद ही समझ सके। बेटी का आत्मालाप उस डर को बूझने में मामूली मगर मूल्यवान मदद करता है—

विन्सेंट द्वारा तोड़े दरवाज़े से निकल / पिता को घर छोड़ते हुए
माँ ने कैसे देखा? / विगत की चिंता माँ क्यों करे
जब उसके सिर पर रखा रसद का बोझ / ज़मीन पर छलक पड़ रहा है?
लैम्प से उतरी छाया प्रेत है / और रात की आवाज़
मूसल उठाए चलते दैत्य की है। / रात जबकि लघुशंका के लिए वह उठी
पूरे प्लाट का चक्कर लगा आयी / माँ इतनी डरी क्यों है
दो बेटियों को जनने के बाद भी?

विजिला (1981) दलित स्त्री कवियों में अग्रणी नाम हैं। उनके अब तक दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं— *अटुक्कळ्यिल्लात्त वीटु* (रसोई रहित घर, 2006) और *अम्मा ओरु काल्पनिक कवितायिल्ला* (अम्मा एक काल्पनिक कविता नहीं है, 2009)। विजिला वाम विचारधारा से जुड़ी रचनाकार हैं। उनकी कविताओं के सरोकार इस सम्बद्धता का सबूत देते हैं। अपने पहले संग्रह में उन्होंने समाज के हाशिये पर रहने वालों का दर्द बयाँ किया है। ख़ौफ़ के साये में जीते, उजड़ने और बसने की आवृत्तियों में उलझे साधनहीन लोग उनकी कविता में मौजूद हैं। झुग्गियाँ ढहाने वाली जेसीबी मशीन पारम्परिक क्रूरता के तकनीकी विकास का एक नमूना है। उसे मात्र यंत्र मानना भूल है। वह वर्गीय हिंसा का नया माध्यम है। 'पीली यक्षी' शीर्षक यह कविता हिंसा की स्मृति का यंत्रावतार है— 'रात को वह नहीं आती/ अकेली भी नहीं/ दिन में आती तो/ ख़ून की प्यासी नहीं।/ दाँतों/ और तेज़ नाख़ूनों को दिखाती/ कुश्तीवाले की तरह/ घूरती आँखें/ जड़ें तोड़ फेंकती हैं/ पुराने सबकी।/ ऊँचाइयों की/ विरोधिनी है वह/ पैसों के बंद की गंध से/ पीली पड़ी है आँखें।/ जेसीबी/ एक पीली यक्षी है/ किसी जादूगर की/ कील की/ शिकार न होने वाली/ देह में/ वह ऊँचाइयों की तरफ़ है।' इसी भावबोध की एक कविता है 'पोखर घाट पर नहाते समय'। यहाँ नहाती हुई स्त्री की हर गतिविधि छुपे कानों, आँखों से रिकॉर्ड की जाती है। कवयित्री वहाँ नहाने वाली स्त्रियों को सावधान करती है। गोपन या पलायन के बजाय वह स्थिति का 'अपने' ढंग से सामना करने की सलाह देती है— 'महीने के ख़ून से/ पोखर को लाल बनाओ/ उसकी आँखें बंद हो जाएँगी/ बिना देखे ही तुम देख पाओगी/ ऐसा नहीं है कि/ पोखर घाट पर/ पुरुष का एक समय और/ स्त्री का दूसरा समय हो/ उसके आने पर/ महीने के कपड़ों से/ एक दृश्य सजाकर रखो।' 'प्रतिरोधी शस्त्र' कविता का उद्देश्य भी स्त्री को आत्मरक्षा में आत्मनिर्भर बनाना है। हर रात एहतियातन तकिये के नीचे चाकू रखने की हिदायत देती कविता यह भी कहती है— 'तकिये के नीचे ही नहीं/ जुबान में/ झोली में भी ज़रूरी है/ अकेली यात्रा यही याद दिलाती है।' 'इनिक्कु नखम् नीत्तन काषियिल्ला' (मैं अपने नाख़ून नहीं बढ़ा सकती) में कवयित्री नाख़ून बढ़ाने की ज़रूरत बताती है। लौहवत नाख़ून सुरक्षा करेंगे।

विजिला दलित स्त्री के अंतर्जगत का सोद्देश्य चित्र प्रस्तुत करती हैं। यह चित्र भौतिक असुरक्षा और उससे टकराती इस्पाती बेफ़िक्री से बना है। उनकी 'पगडण्डियाँ' नामक कविता घास काटती हिम्मती महिला उम्माजी से परिचय कराती है। उम्माजी की छींटदार साड़ी और मेहँदी रचे हाथ ख़तरे का सबब हैं। शिकारी की निगाह इधर घूमी है। पगडण्डी पर वही पुराना अँधेरा है। कवयित्री इस अँधेरे को दौड़कर पार करना चाहती है। उसने कभी सपना देखा था कि पगडण्डी पर आग लगेगी— 'पगडण्डी पर पहुँचकर/ तेज़ दौड़ती हूँ/ सड़क पर पहुँचने के बाद ही/ मुड़कर देखती हूँ।/ काना जनार्दनन/ सीत्कारी आवाज़ों के/ छेद/ साँप का केंचुल/ छितरा पड़ा लाल रिबन/ सभी पगडण्डी पर प्रतीक्षा में हैं।/ पगडण्डियों पर/ आग लगने का सपना/ कल देखा था/ किसी से डरे बिना/ उम्माजी तब भी/ मेहँदी रची हथेलियों से/ घास काट रही हैं।'

वर्ग का सवाल विजिला की नज़र से ओझल नहीं होता। वे दलित स्त्रियों में भी वर्गभेद का मुद्दा उठाती हैं। अस्मितावादी धारा से उनकी भिन्नता का यह महत्त्वपूर्ण बिंदु है। 'स्त्री-दूरी' नामक यह कविता विषमता की अनदेखी परतों को देखने कि दृष्टि देती है— 'मैं/ दोनों पैरों को सँभालकर/ बाइक के पीछे बैठी हुई हूँ/ सड़क के किनारे/ एक लड़की/ पत्थर तोड़ रही है।/... उसके पैरों के बीच में/ फोड़े पत्थरों का भण्डार है।/ आँगनवाड़ी/ राशन की दुकान/ सरकारी अस्पताल/ बाज़ार पार करके/ मैं यहाँ/ ब्यूटी पार्लर पहुँच गयी हूँ।' परिवार विजिला की कविताओं का एक केंद्रीय विषय है। उसमें माँ की उपस्थिति बड़ी महत्त्वपूर्ण है। संबंधों के ताने-बाने में शक्ति और संवेदना के समीकरण माँ से निर्धारित होते हैं। माँ रचनाकार बेटी को कच्ची सामग्री देती है और दृष्टि भी। 'अम्मा एक काल्पनिक कविता नहीं है' की माँ बड़े बेलौस तरीक़े से यथार्थ की विडम्बनाएँ उद्‌घाटित करती है। कविता की आख़िरी पंक्तियाँ हैं— 'कंक्रीट का मकान और रबड़ वाले/ इस देश में बिलकुल बीपीएल हैं/...रेडियो पर/ संस्कृत समाचार सुनने पर/ उसे बंद करने को कहती हुई/ अम्मा काम के लिए निकलती हैं।'

युवतर पीढ़ी की रचनाकारों में प्रवीणा के.पी. (1983) उल्लेखनीय नाम है। प्रवीणा ने अंतरराष्ट्रीय अध्ययन विषय में शोध किया है। उनकी कविताएँ वैश्विक संदर्भों का भी संज्ञान लेती हैं। अपनी कविता 'अच्छे लोग' में उन्होंने सामाजिक विद्रूप की पहचान की है। यह पहचान व्यंग्यार्थ में नहीं, वाच्यार्थ में की गयी है। संरचना में विन्यस्त तथा गतिशील हिंसा पहचान के क्रम में झलकती जाती है। शब्दों के अर्थ भी उलटते हैं। सज्जनों को देखकर दहशत होती है। देवदूत क्रूरता बरपाते हैं। वास्तविकता का ऐसा प्रकटन सहमकर जा छिपने को बाध्य कर दे, यह स्वाभाविक लगता है। मगर, चेतनशील व्यक्ति अब पलटकर मुठभेड़ करने को तैयार है—

> अच्छे लोगों से मैं हमेशा डरी रही हूँ / जब भी मैं सज्जनों को देखती हूँ,
> मुस्कुराने की कोशिश करती हूँ। / या फिर मैं वह जगह छोड़ देती हूँ।
> वे फिर भी मुझे ढूँढ निकालते हैं और मेरी तरफ़ पत्थर उछालते हैं। / हम दोनों इसकी वजह नहीं जानते।
> मैं चलती हूँ अपने सत्य के पथ पर, / बग़ल से गुज़रते देवदूत मुझे कर देते हैं घायल
> और उड़ जाते हैं स्वर्ग की ओर। / उनके पंखों पर लगा है ख़ून
> और मेरे विचारों में आग।

रम्या तुरवूर (1984) की रचनाशीलता अपने समकालीनों से भिन्न है। भिन्नता की मुख्य वजह उनकी कविताओं की अंतर्वस्तु है। विशिष्ट अंतर्वस्तु अपनी शैली साथ लिए चलती है। इस लिहाज़ से रम्या का काव्य मार्ग अपनी सम्पूर्णता में नवाचारी लगता है। उनका प्रकाशित काव्य संग्रह *परंजु तीरततु* (2011) उन्हें किसी भी अस्मितावाद के दायरे से बाहर रखने की हिमायत करता है। रम्या तुरवूर की कविताओं का उल्लेखनीय पक्ष विषादमयता है। यह विषाद उन वजहों से नहीं उपजा है जिन्हें हम बख़ूबी पहचानते हैं और किसी प्रदत्त विधि से उसके समाधान के तरीक़े से भी अवगत हैं। बेहद वैयक्तिक क़िस्म के इस विषाद का रंग-रूप चिह्नना कठिन है। 'सामान्य' होने से इनकार करता यह विषाद सबका अपना भी हो सकता है और किसी को भी अपना लगने से छूट सकता है। जहाँ रम्या विषाद की सामान्य भूमि पर जाती हैं वहाँ पर भी वे अपनी काव्य प्रतिभा से वैशिष्ट्य रच देती हैं— 'यहाँ पर सिर्फ़ अधखिले चेहरे हैं/ शब्दों को सुखाने वाले रेगिस्तानों में/ डूबे हुए हैं कई/ दूसरे कई/ इंतज़ार के काले कम्बल के नीचे/ नमी की छींट ढूँढ़ने वाले चिड़ियों के समान/ खिड़कियों की पोर में छिपाकर रखे/ तालाबी लहरें आज असंख्य हैं/ पुराने समय में मेरे हृदय से खींचे पूरे/ जीवन का रेत-चित्र/ हज़ारों चींटियाँ खाने वाले के खाते की/ ऐतिहासिक लिपि में डाल दिया जाता है।'

रम्या के यहाँ विषाद का एक स्रोत प्रेम है। दोनों आपस में जुड़े हुए साथ-साथ चलते हैं। भग्न प्रेम से उपजे विषाद पर कई बार तिक्तता हावी होती है। तब विषाद का आकाशी रंग धुँधला जाता है। उम्मीद होती है कि रम्या भग्नता को सामाजिक संरचना में ढालकर उसे जेण्डरगत परिप्रेक्ष्य देंगी। इससे विषाद का विचारधारात्मक आधार ज़ाहिर हो जाएगा और व्याख्या आसान हो जाएगी। ज़ाहिर है वे

ऐसा प्राय: नहीं करतीं। इससे उनकी तिक्तता या विषाद के सामान्यीकरण की राह आसान नहीं रह जाती। 'बीज' कविता की प्रारम्भिक पंक्तियाँ हैं— 'हर एक निम्नता में/ सुषुप्त जंगली नदी के साथ/ तेरे घाव का संगीत/ जागे बिना रह नहीं सकती, तेरे लिए/ अनंत अतृप्त सागर गरजता है/ कच्ची धमनियों की बुनी/ आकाशी श्रद्धा में/ एक चिड़िये की जवानी को विभक्त करके/ तेरी ऊँघती विस्फारित आँखों में रखा है/ अंधता का वसंत/ रिहाई के नितांत में/ व्यापने को निर्णित ज़ुबानी पत्ते पर/ पनपे मंत्र में तुम अंतिम झूठ हो।' पोर-पोर में समाई पीड़ा विषाद कही जाती है। विषाद बनने से पहले वह दु:ख है। रम्या की कविताओं में दु:ख के कई रंग हैं मगर उत्स एक है। 'चेहरे' कविता का एक अंश इस दु:ख को यों आलोकित करता है— 'प्यार के एवज में हृदय पर/ सुइयों की नोक दबाता हुआ/ प्रेम के अखण्ड मंत्र का अर्थ ढूँढ़ने वाला/ प्रेमी का दु:ख/ आगे/ जड़हीन दरख़्तों को/ दिल पर रखकर/ पूर्वजन्म की स्मृतियों को जगाने वाला/ दुश्मन का चेहरा/ फिर/ अथाह गर्त में डूबते रहने पर/ पास खड़े बेहाथ-बेआँख/ दोस्त का चेहरा/ ईश्वर... अब कितने दिन हैं/ चेहराविहीना... मैं!' रम्या की निगाह पुराने मिथकों पर भी गयी है। महाकाव्यों में दलित पात्रों के साथ हुआ अन्याय उन्हें बहुत उद्विग्न करता है। क्योंकि यह अन्याय शब्दों में घटित होकर चिरकालिक बना है इसलिए कवयित्री का गुस्सा अक्षरों पर भी उतरा है— 'कल तुम मरे पड़े थे/ फटी किताब के पन्नों पर/ जीवन के सड़े भग्नावशेषों पर/ सपनों के फसल काटे खेत में।' कवयित्री पाती है कि अन्याय की वह परम्परा अब भी क़ायम है। द्रोण आज भी अँगूठे की ताक में रहता है— 'अँधेरों से बने द्रोण सिंहासन पर/ आज भी भेदभाव के आँसू/ ... सितारों से बनी/ तेरी आँखें/ कल के एक/ अँगूठे की प्रतीक्षा में पड़ी रहती हैं।'

रम्या की प्रेम कविताओं में देह की मौजूदगी है। वे ऐंद्रिकता को अपने काव्य-अनुभव के भीतर रखती हैं। इस तरह वे अपनी प्रेम कविताओं को अमूर्त होने से बचा ले जाती हैं। 'अरूपियों की घाटी' कविता का उत्तरार्ध देखिए— 'मैं किसी जंगल की आग/ मेरे विकल अक्षरों में फँसकर/ अलग होने में असमर्थ तेरी अँगुली/ मेरी शिराओं में तेरी दी हुई प्रेम की/ चमकती कटकती आँच/ एक-एक घाव पर, तुमसे समृद्ध रातों में/ उन्माद से भरी अपनी पोटली/ तैयार रखती हूँ।/ जंगली आग की गंध उठाने वाली देह के साथ/ तेरी छाया की तंद्रा की प्रतीक्षा में/ बैठी रहती हूँ।'

धन्या एम.डी. (1984) चर्चित रचनाकार हैं। उनकी कविताओं की किताब *अमिग्दला* (2014) ने कवियों और आलोचकों का ध्यान आकर्षित किया है। काव्यानुभूति की सघन बुनावट और अभिव्यक्ति के अद्भुत मुहावरों के कारण धन्या समकालीन मलयालम कविता में विशिष्ट मुक़ाम हासिल करने की

दलवक्कुलावुम वैकथे क्रिस्टिवरुम / दलितबंधु एन.के. जोसे
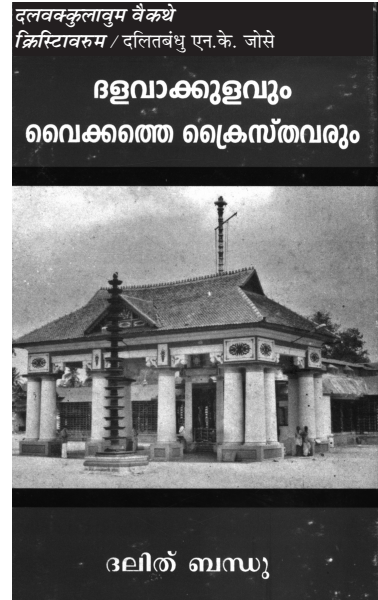
के.के. निर्मला की कविता 'दण्ड' दलित अस्मिता की परिचित आवाज़ है मगर साथ ही दलित स्त्रीवाद का कम सुना गया स्वर भी है—

एक दिन आऊँगी मैं / दबावों के चलते नहीं / न किसी की दासी बन कर / तनी हुई रीढ़ के साथ किसी के सामने झुकती हुई नहीं/ बग़ैर किसी चूक के किसी को बातचीत की अनुमति दिये बिना/ सोचने का समय दिये बिना आलोचना की परवाह न करके/ प्रतिक्रियाओं के लिए अवकाश दिये बग़ैर / तब मेरा साथी होगा सत्य / कर्म मेरी ताक़त / अगर कोई अदालत है दुनिया में / होगी वह सिर्फ़ मेरी / होगा सिर्फ़ एक क़ानून / मेरा क़ानून / उसमें होंगे केवल कठोर दण्ड

क्षमता रखती हैं। उनकी कविताओं में यादों का अछोर संसार बसता है। ये यादें वैयक्तिक अनुभव से परिसीमित नहीं हैं। पारिवारिक स्मृतिकोष में रचनाकार के अपने हिस्से की यादें विरासत का दायरा विस्तृत करती हैं। अतीत स्मृति का क्रीड़ा-प्रांगण है जहाँ अनुभवों के रेशे अमीबावत् आकार ग्रहण करते रहते हैं। स्मृति बनते अनुभव अपना इंद्रियबद्ध वैशिष्ट्य तज देते हैं। अनुभव इस तरह नवता अर्जित करते हैं और स्मृति इस रास्ते सामयिक होती चलती है—

बारह लोग थे / प्राचीन प्रपितामहों की शक्ल में
वात्सल्य सिक्त आँखें / दो पंक्तियों में अंतिम छोर तक
गा रहे थे / अबूझ भाषा में
पीले रंगों में कुछ गाने / ... ...
बारह विशुद्ध कांतियाँ / कभी छूटे गतकालीन गाने को
याद करती हुई / उसी ताल पर होंठ थरथराये / आँखें मूँद लीं /
गाना दूर गया / तरंगों पर शेप /
गाने में डूबे पीले मोतियों वाली / नारी देह
इंद्रधनुषी छिलकों वाली लम्बी विस्तृत /
पतवार पूँछ एक / असमाप्त मछली-गंध!

धन्या की कविता चुप्पी की पहचान करती है। इस चुप्पी में विशाल दुनिया समाई हुई है। चुप्पी की कल्पना कानों से की जानी है। कान जो सिर्फ़ सुनते नहीं, देखते भी हैं। एक दृश्य जिसमें सब समाया हुआ है— 'गुड़हल के फूल के लाल छोर के पीलेपन पर/ दौड़ आती छोटी चींटी की पदछाप' से लेकर सांध्य मेघों की रफ़्तार चूसता बेआवाज़ लहरों वाला सागर तक। प्रकृति का पसारा— तमाम छवियाँ, वस्तु, ध्वनियाँ और भावनाएँ सब एक सिनेमाघर में सिमट आये हैं। आधुनिक मनुष्य की विराट लघुता का रूपक है यह आकार, जिसे सिनेमाघर कहते हैं। आत्महत्या के दृश्य पर कवि को घेरती कविदृष्टि 'उसके बाद' नामक कविता में निबद्ध है। कविता का विश्लेषण उसके अर्थ-सम्भार के साथ न्याय नहीं कर सकता। पूरी कविता यों है— 'क्लोजअप में देखा/ दो पैरों को!/ बढ़े अँगूठों में एक की नोक पर ख़ून/ का नीला धब्बा/ कविदर्शक ने कहा/ 'ख़ुदकुशी' एक फ़र्ज़ी युद्ध है।/ हार न मानने वाला!/ एकांत से टपका आँसू भर था/ आहुति की टिप्पणी का एकमात्र शब्द!/ भीड़ के बीच में बंद किताब/ अचानक आवाज़ के साथ खुल गयी।/ पन्ने पलटने की सरसरी आवाज़/ स्पष्टीकरण की फुसफुसाहट ... / तब भी/ ख़ून से लथपथ वर्णित एक दिल और/ तालाबी वेदनाएँ बंद ही रह गयीं।' 'वनस्पति विज्ञान' शीर्षक कविता में अध्ययनकर्त्री को फूलों पर शोध करना है। प्रक्रिया के तहत वह अपने अध्ययन में पराग, खुशबू और सौंदर्य को भी शामिल करती है। फूल की धमनियों का उत्स खोजते वह गीली मिट्टी के गहरे अँधेरे तक पहुँचती है— 'गहराई में/ नमी खोजने पर/ घाव और ख़ून से सिंचित निशान/ फूल के/ मृदु गंध और मुस्कान के नीचे/ वेदना का महाकाव्य।' अँधेरे में लेटी हुई रचनाकार फूल में आत्मछवि देखती है। ख़ुद को उस प्रक्रिया से समीकृत करती है। यह समीकरण उसे 'बेबाक जीवन का महाकाव्य' लगता है। 'अमिग्दला' (अंग्रेज़ी शब्द— मस्तिष्क में भावनाओं का केंद्र) की भूमिका प्रतिष्ठित दलित कवि एम. आर. रेणुकुमार ने लिखी है। उन्होंने रेखांकित किया है कि धन्या 'अतृप्त अपूर्ण अभिलाषाओं' की रचनाकार हैं। 'प्रणयमे' कविता की ये पंक्तियाँ उन्होंने बतौर साक्ष्य उद्धृत की हैं— 'तुम्हारे द्वारा शिल्प बनाने की/ ध्वनियाँ ही हैं/ मेरे सीने की सूक्ष्म धड़कनें/ मेरी चट्टानी देह के/ टेढ़े मेढ़े मोड़ हैं/ तुम्हारे रगड़ने से बनी अभिलाषाएँ/ जमी हुई/ ठण्डी चट्टान के नीचे/ उछलकर बह रही है/ अँधेरी लालसाओं की/ गुनगुनी लहू।' रेणुकुमार का यह कथन ग़ौरतलब है कि 'स्त्री के अंतस और शरीर के बारे में नयी कविता में प्रचलित सामान्य अभिव्यक्तियों के अंदर घुसकर उन्हें सिरे से उलट देने के अंदाज़ में नये ऊर्जा प्रवाहों को प्रसारित करने की ताक़त इन कविताओं

में है।' 'गृहस्थी' कविता की यह पंक्ति उदाहरण के तौर पर देखी जा सकती है— 'गीतों को गूँथते-गूँथते/ अंगारों पर सपनों के/ हास की चमक भर दी यों।' अननुभूत को अनुभव का विषय बना सकने की क्षमता के चलते धन्या अनोखेपन की सृष्टि करती हैं। उनकी प्रेम कविताएँ अंतर्वस्तु और अभिव्यक्ति में अनोखेपन की गवाही देती हैं। समुद्र में पतवार चलाना जैसे उसकी बुनाई करना है वैसे चटाई की बुनाई पतवार चलाने जैसा है। पतवार चलाती स्त्री अपनी इंद्रधनुषी लालसाओं को उसमें बुनती जाती है। एकमेक अनुभव जीवन के सांद्र बिम्ब रचते हैं। धन्या की कविताओं में यह सांद्रता प्रीतिकर अनोख़ापन और ताज़गी लिए हुए है।

सभी स्तरों पर मलयालम दलित कविता का उत्तरोत्तर उन्नयन और विस्तार आश्वस्तिकारक है।

संदर्भ

एम.बी. मनोज (सं.)(2008), *राइटिंग इन द डार्क : अ कलेक्शन ऑफ़ मलयालम दलित पोएट्री,* जॉर्ज के. अलेक्स, अनु. अजय शेखर, विकास अध्ययन केंद्र, मुम्बई.

डॉ. जार्ज के. अलेक्स (2008), *रिइनवेंटिंग आइडेंटिटी : एंथोलॅजी ऑफ़ दलित राइटर्स, केरल,* एलिज़ाबेथ जॉन, विकास अध्ययन केंद्र, मुम्बई.

डॉ. एस.आर. चंद्रमोहनन (2011), *रिट्रीविंग द ब्यूटी ऑफ़ ब्लैकनेस : अ ब्रीफ़ स्टडी ऑफ़ द एवोलूशन ऑफ़ दलित पोएट्री इन मलयालम,* रेवन पब्लिकेशंस, तिरुवनंतपुरम.

द ऑक्सफ़र्ड इण्डिया एंथोलॅजी ऑफ़ मलयालम दलित राइटिंग (2012) ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, वाइएमसीए लाइब्रेरी बिल्डिंग, जयसिंह रोड, नयी दिल्ली.

एम.डी. धन्या (2014), *अमिग्दला,* भूमिका : एम.आर. रेणुकुमार, डी.सी. बुक्स, कोट्टयम. मेरे अनुरोध पर पढ़ने के लिए इस भूमिका का अनुवाद एच. बालसुब्रह्मण्यम ने किया.

प्रो. ए.अच्युतन (2007)(सं.), *मलयालम में दलित साहित्य : दृष्टि और सृष्टि,* प्रकाशन विभाग, कालीकट विश्वविद्यालय.

'मलयालम दलित कविता', चयनित कविताओं का अनुवाद, *कथादेश,* फ़रवरी, 2010.

'मलयालम दलित कविता', चयनित कविताओं का अनुवाद, *कथादेश,* मई, 2010.

'मलयालम दलित स्त्री कविता', चयनित कविताओं का अनुवाद, *कथादेश,* जून, 2012.

'मलयालम दलित कविता', एम.आर. रेणुकुमार की चयनित कविताओं का अनुवाद, *कथादेश,* अगस्त, 2012.

'मलयालम का प्रगतिवादी साहित्य और दलित जीवन', कडम्मनिट्टा की लम्बी कविता 'कुरत्ति' का अनुवाद, *कथादेश,* फ़रवरी, 2016.